हब्बा ख़ातून

श्याम लाल साधू

H
891.499
Sa 15 H

भारतीय
साहित्य के

H
891.499
Sa 15 H

अस्तर पर छपे मूर्त्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है जिसमें तीन भविष्यवक्ता वृद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखनकला का यह सम्भवतः सबसे प्राचीन चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

हब्बा ख़ातून

लेखक

श्यामलाल साधू

अनुवादक

शिबन कृष्ण रैणा

साहित्य अकादेमी

Habba Khatoon : Hindi translation by Shiban Krishna Raina of S. L. Sadhu's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (1988),

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© साहित्य अकादेमी

Library IIAS, Shimla
H 891.499 Sa 15 H
00094870

प्रथम संस्करण :

द्वितीय संस्करण : 1988

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-वी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700 029

29, एल्डाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

H
891.499
Sa15H

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

94870
13/3/2000

मुद्रक
मित्तल प्रिण्टर्स,
दिल्ली 110 032

अनुक्रम

हब्बा ख़ातून का युग	7
खेतों से राजमहल तक	14
हब्बा ख़ातून की कविता	42
कश्मीरी कविता पर हब्बा ख़ातून का प्रभाव	58
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	63

हब्बा ख़ातून का युग

इतिहास में ऐसे अनेक राजाओं एवं रानियों का उल्लेख मिलता है जो अपनी शूरवीरता, राजकौशल और बुद्धिमत्ता के कारण अमर हो गये हैं। कतिपय राजा-महाराजा इसलिए सर्वविख्यात हुए हैं कि उन्होंने विद्या-बुद्धि, काव्य और कला को संरक्षण प्रदान किया। एक नरेश की जीवनसंगिनी हब्बा ख़ातून अपनी काव्य-रचनाओं से ही कश्मीरी साहित्य-जगत् में संगीत-साम्राज्ञी के रूप में सदा-सदा के लिए अमर हो गयी। यह ग्राम्य बाला हब्बा ख़ातून की काव्य-कीर्ति का ही परिणाम है कि उसके पति यूसुफ़शाह चक को इतिहास ने विस्मृत नहीं होने दिया है। सच तो यह है, कि कवि की अन्तर्दृष्टि और ख्याति उसे अमर बना देती है। कल्हण ने **राजतरंगिणी** में कवि को इन शब्दों उचित ही यह श्रद्धांजलि अर्पित की है—

> "मैं कवि की अनिर्वचनीय अन्तर्दृष्टि की वंदना करता हूँ जो अमृतधारा से भी महत्तर है और जिसके द्वारा स्वयं कवि और अन्य सबको परमानंद की प्राप्ति होती है।"

हब्बा ख़ातून का आविर्भाव उस युग में हुआ जब कश्मीर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पराभूत था। कश्मीर को शहाबुद्दीन जैसे शक्तिशाली और ज़ैनुलाबदीन जैसे यशस्वी शासक देने वाले सुल्तान वंश का प्रभाव अब न्यून हो गया था और सत्ता उन सामंती नवाबों के हाथों में चली गई थी जो राज्यसत्ता पर अपनी दावेदारी जताने के लिए शक्ति-प्रदर्शन की होड़ में संलग्न थे। उधर, इस स्वार्थपूर्ति में इन नवाबों को बाहर के कतिपय महत्त्वाकांक्षी एवं धन-लोलुप व्यक्तियों का खुला समर्थन भी प्राप्त था। विरोधी ताक़तों के बीच सांघातिक द्वन्द्व तथा लगातार शस्त्र-प्रयोग के फलस्वरूप बड़ी-बड़ी इमारतें, मुहल्ले के मुहल्ले तथा अनेक पुल जला दिये गये और अकाल ने कश्मीर की घाटी को ग्रस लिया। सुलतान-वंश का आखिरी शासक हबीबशाह इतना कमज़ोर और कायर निकला कि 1554 ई. में भरे दरबार में उसे गद्दी से उतार दिया गया और

किसी ने उसके समर्थन में एक उँगली तक नहीं उठाई। गद्दी पर चक वंश के ही एक अन्य प्रभावशाली सभासद् अलीख़ान ने अधिकार जमा लिया। उद्यमशील होने के साथ-साथ अलीख़ान निर्भीक एवं साहसी भी था। उसका सारा समय विद्रोहों को दबाने तथा झगड़े-फ़सादों को मिटाने में ही बीता। फलस्वरूप, न तो यह शासक और न ही उसका कोई उत्तराधिकारी शांति-स्थापना के उपायों की ओर ध्यान दे पाया जिसकी उस समय जनता को राहत दिलाने के लिए बहुत आवश्यकता थी। इसके अलावा कुछ अन्य जटिल कारणों से भी चक शासन के दौरान जनसाधारण को और भी कई तरह की परेशानियाँ उठानी पड़ीं। चक चूँकि मूलतः शिया सम्प्रदाय के थे, अतः उनके धर्मोन्माद का खमियाज़ा—हिन्दुओं और सुन्नी-मुसलमानों—दोनों को उठाना पड़ा। हालत तब और भी बिगड़ गई जब सुन्नी-शिया विवाद ने अधिक कुत्सित रूप धारण कर लिया जिससे इन दो संप्रदायों के लोगों के बीच गहरी दरार पड़ गई और जन-साधारण की उनके प्रति कोई सहानुभूति नहीं रही। उधर, एक और महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि सुदूरदर्शी मुग़ल बादशाह अकबर के मन को कश्मीर का सौन्दर्य लुभाने लगा। आपसी मतभेद, रंजिश और लड़ाई-झगड़े के कारण कश्मीर के असंतुष्ट नेता आये दिन बादशाह सलामत (अकबर) से या फिर उनके सूबेदारों से सहायता माँगने लगे जो बदले में उन्हें दल-बदल करने तथा घाटी में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण पैदा करने के लिए प्रेरित करते।

उपर्युक्त विषम परिस्थितियों के परिणामस्वरूप जनता का जीवन अपार कष्ट में बीत रहा था। 1534 ई. में हुए काशगरी आक्रमण की वजह से अगले एक वर्ष के दौरान घाटी में जो भयंकर अकाल पड़ा, उसके कारण अनेक किसानों को अपनी जान बचाने के लिए घर और खेत छोड़कर जंगलों तथा पहाड़ों की कंदराओं में शरण लेने के लिए जाना पड़ा। लगभग पचास वर्षों तक इन लोगों का युद्धलोलुप सरदारों द्वारा शोषण-दमन होता रहा। उन सरदारों तथा उनके सम्पूर्ण अमले (किराये के सिपाही, टट्टू आदि) के लिए इन असहायों को मेहनत करके भोजन-सामग्री तथा अन्य सुविधाएँ जुटानी पड़ती थीं। किसी भी शासक का ध्यान इस ओर नहीं गया कि वह सिंचाई के साधनों, बाढ़ रोकने के उपायों तथा शाल-उद्योग या अन्य हस्त-कलाओं को विकसित करने के विविध तरीक़ों को बढ़ावा दे। परिणामस्वरूप समाज के तीन वर्गों, अर्थात् कृषकों, शाल-बनुकरों (शालबाफ़ों) और हस्तकलाकारों में व्यापक स्तर पर बेरोगाज़री छा गई। ये सारी विपत्तियाँ एवं प्रताड़नाएँ मनुष्य द्वारा निर्मित थीं, लेकिन प्रकृति ने भी कोई क़सर बाक़ी नहीं रखी। 1576 ई. में घाटी में असमय हिमपात हुआ जिसका दुष्प्रभाव यद्यपि तीन वर्षों तक ही रहा किन्तु आने वाले दस वर्षों तक घाटी की अर्थव्यवस्था को उसने चरमरा कर रख दिया। जब अकबर ने कश्मीर को अंततः अपने राज्य में मिला

लिया, तो उसने तुरन्त 'नागर नगर' (शुक के अनुसार नाग नगरी) के इर्दगिर्द एक करोड़ दस लाख रुपये की लागत से एक दुर्ग-प्राचीर बनाने की वृहत्-योजना बनाई ताकि लोगों को रोज़गार मिल सके और उनका घोर दारिद्र्य दूर हो। (इस दीवार के कतिपय खण्डित भाग अब भी श्रीनगर में हारी-पर्वत के आसपास देखे जा सकते हैं) कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हब्बा-ख़ातून के जीवन-काल में जनता बहुत दुःखी थी और उसका यह दुःख-दर्द चरम-सीमा तक पहुँच चुका था।

विद्वानों का मानना है कि कश्मीरी भाषा की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। उनकी यह भी मान्यता है कि इस भाषा का संबंध उस जनभाषा से है जिसमें वृहत्कथा (गुणाढ्य कृत) और मिलिन्द पण्हो (मिलिन्द प्रश्न) रचे गये थे। चूँकि इन दोनों रचनाओं की मूल प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हो सकी हैं, अतः किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं है। कश्मीरी में लिखित प्रथम रचना के नमूने हमें **राजतरंगिणी** (श्लोक सं. 398) में उपलब्ध, तीन शब्दों के रूप में इस प्रकार मिलते हैं—'रंगस हेल द्युन···।'

राजा चक्रवर्मन (935-37) ई. के इस राजादेश का अर्थ है—'हेल गाँव रंग को दिया जाता है।'

भाषा के इस रूप से स्पष्टतया लक्षित होता है कि उस काल में कश्मीरी भाषा अपने वर्तमान स्वरूप के निकट आने लग गयी थी। कश्मीरी भाषा का दूसरा नमूना तेरहवीं शताब्दी में रचित शितिकंठ की रचना **'महानय प्रकाश'** (परमोपलब्धि का प्रकाश) में देखने को मिलता है। चौरानवे छन्दों में निबद्ध इस रचना की भाषा आज की कश्मीरी से उतनी ही भिन्न है जितनी कि पुरानी अंग्रेज़ी वर्तमान अंग्रेज़ी से। पुरानी कश्मीरी ध्वनिप्रधान थी परन्तु कालान्तर में स्वर-परिवर्तन की व्यापक प्रक्रिया ने इसे वर्तमान रूप प्रदान किया, जो पुरानी कश्मीरी से नितान्त भिन्न है। अयोगात्मकता से योगात्मक की ओर भाषा-विशेष की प्रवृत्ति के उदाहरण-स्वरूप डॉ. ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा की इस परिवर्तन प्रक्रिया को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है।

चौदहवीं शताब्दी के तीसरे दशक में कश्मीरी भाषा और साहित्य के लिए दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। एक थी ललद्यद (1335-1385 ई.) का साहित्य-जगत् में प्रादुर्भाव और दूसरी 1339 ई. में सुलतान-वंश, जिसने कश्मीर पर दो सौ वर्षों तक शासन किया, के संस्थापक-शासक शाहमीर के हाथों में सत्ता का आ जाना। ललद्यद की भाषा शितिकंठ की भाषा की तुलना में कश्मीरी के वर्तमान स्वरूप के काफ़ी निकट है। अपनी भावनाओं तथा रहस्यात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए ललद्यद ने वाख (चतुष्पद) को चुना जिसका जनता पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। उसने पाखंड एवं असत्य के आवरण को भेदने का प्रयास

किया क्योंकि इन्हीं के कारण जनता भ्रम में पड़ी हुई थी। ललद्यद के ही समय के एक अन्य कवि शेख नूरुद्दीन (1377-1440 ई.), जो आयु में उनसे छोटे थे और स्थानीय लोग जिन्हें श्रद्धावश शेख-उल-आलम के नाम से पुकारा करते थे, ने भी कश्मीरी कविता को एक नई प्राणवान दिशा दी। उनकी पद्यात्मक उक्तियाँ श्रुक कहलाती हैं जो विषय-वस्तु की दृष्टि से ललद्यद के वाख से भिन्न नहीं हैं। कश्मीरी साहित्य में ललद्यद और शेख नूरुद्दीन. दोनों को उच्चकोटि के संत कवियों के रूप में स्वीकार किया जाता है। दोनों का लक्ष्य जनता को सादगी, सच्चाई, सदाचार और आत्म-शुद्धता का पाठ पढ़ाना था।

हब्बा ख़ातून का जन्म ललद्यद के लगभग दो सौ वर्ष बाद हुआ। अपनी रचनाओं में हब्बा ख़ातून ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उसमें प्राय: वे सारी विशेषताएँ आ गई थीं जो आज की कश्मीरी भाषा में पायी जाती हैं। कश्मीरी भाषा को उसको वर्तमान स्वरूप तक ले जाने की यात्रा में जहाँ ललद्यद की भाषा शितिकंठ से आगे रही, वहाँ हब्बा ख़ातून की भाषा ने उसे अधिक परिष्कृत कर और आगे बढ़ाया। इस परिष्करण के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण कश्मीरी पर फ़ारसी का प्रभाव था। यह प्रभाव 1339 ई. में हुई उस मूक-क्रान्ति के फलस्वरूप कश्मीरी भाषा पर पड़ा, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कई मुसलमान सुलतानों ने जहाँ पंडितों और संस्कृत को प्रश्रय दिया, वहाँ उन्होंने उतना ही संरक्षण फ़ारसी को भी दिया। इन्हीं दिनों पश्चिमी और मध्य एशिया से जिन सैकड़ों सैयदों ने कश्मीर में आकर शरण ली, उनमें अनेक कवि, विद्वान्, संत और धर्मशास्त्री भी थे। उन सबने भी फ़ारसी को ही अपने प्रचार का माध्यम बनाया। इस प्रकार, थोड़े ही अन्तराल में फ़ारसी को राजभाषा का दर्जा मिल गया। चूँकि फ़ारसी का व्यवहार समाज के विभिन्न वर्गों में बराबर होता रहा, इसलिए कश्मीरी भाषा की संरचना और प्रकृति पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कश्मीरी ने फ़ारसी और अरबी भाषा से अनेक नये शब्द ग्रहण किये तथा अनेक प्रचलित शब्द अपने नये अर्थों में व्यवहृत होने लगे। इतना ही नहीं, कश्मीरी कलाओं के विभिन्न रूप भी फ़ारसी के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। कश्मीरी की साहित्यक संरचना पर भी इस भाषा का खास प्रभाव पड़ा। इस बात की पुष्टि ज़ैनुलाबदीन के शासन काल (1420-70 ई.) में रची गयी कश्मीरी रचनाओं से स्पष्टतया हो जाती है। सुलतान वंश के विभिन्न शासक यहाँ तक कि यूसूफ़शाह चक भी स्वयं संस्कृत, फ़ारसी और कश्मीरी में रचनाएँ करते थे। दूसरे शब्दों में वे इन तीनों भाषाओं का प्रयोग करना जानते थे। प्रतिक्रिया स्वरूप प्रबुद्ध एवं प्रतिभासंपन्न वर्ग में भी साहित्यिक अभिरुचि जाग्रत हुई और उनकी संवेदनशीलता एक नये रूप में ढलकर मुखरित हुई। एक तरह से एक साझी संस्कृति का उदय होने लगा है।

संगीत, अभिनय और नृत्य कश्मीर में हमेशा से ही मनोरंजन के लोकप्रिय साधन रहे हैं। ज़ैनुलाबदीन ने अपने शासनकाल में संगीत तथा अन्य कलाओं को बहुत प्रश्रय दिया। जब तक कश्मीर मुग़लों के अधिकार में नहीं चला गया था, अन्य सुलतानों ने भी यह क्रम बराबर जारी रखा। राजदरबार में भी अभिनेताओं और नर्तकों को पर्याप्त सम्मान मिला। कला और कलाकारों को प्रश्रय देने की यह परम्परा चक शासनकाल (1554-86 ई०) तक रही। अब तक साहित्य में ललद्यद और नूरुद्दीन के समय की सादगी और चिंतनशीलता पृष्ठभूमि में चली गई थी और उसके बदले एक बार फिर संगीत, काव्य और अन्य कलाओं के राग-रंग के प्रति जनता की रुचि जाग गई थी। फ़ारसी का प्रभाव ग़ज़ल और सूफ़ी कविता सहित, पहले से ही तत्कालीन लोक-चिंतन और संस्कृति में व्याप्त हो रहा था। काव्य और संगीत के सुन्दर मिश्रण से युक्त कश्मीरी गीत-रचना का उद्भव इसी वातावरण में हुआ।

कश्मीर में उच्चकोटि के संतों, महात्माओं, सूफ़ियों तथा अध्यात्मवादियों की कभी कभी नहीं रही। जनता का इन स्थानीय साधु-संतों से सम्पर्क तो था ही मध्य-एशिया और सुदूर पश्चिम के मुस्लिम सूफ़ियों तथा पीरों-दरवेशों से भी उनका निकट का सम्बन्ध रहा। कविता के माध्यम से जिस भक्ति-धारा को कबीर, सिख-गुरुओं, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि ने प्रवाहित किया था, वह धारा कश्मीरी में भी पहुँची। उसे यहाँ पहुँचाने में तीर्थ-यात्रियों, सैलानियों आदि का विशेष हाथ रहा। कतिपय लोगों ने भक्ति में सराबोर होकर गीति-काव्य की रचना की, जिसमें अपने इष्ट (आराध्यदेव) के प्रति उनकी गहरी व्यक्तिगत आसक्ति को अभिव्यक्ति मिली। यद्यपि ऐसे कतिपय गीतों में परमात्मा (परम-इष्ट) से मिलन की तीव्र इच्छा दृष्टिगत होती है, किन्तु मुख्य रूप से इन गीतों में लौकिक प्रेम का ही वर्णन है और इसी ने 'वचनों' (गीतों) को नव-स्फूर्ति और जीवन-शक्ति प्रदान की।

ये मधुर एवं मर्मस्पर्शी गीत पाँच शताब्दियों के दीर्घ समय में मौखिक अथवा गेय रूप में उच्चकोटि के व्यवसायी और ग़ैर-व्यवसायी गायकों द्वारा हम तक पहुँचाये गये हैं। पूरे तथ्यों के अभाव में यद्यपि इन कलाकारों (गायकों) के बारे में स्पष्टतया कुछ कह पाना संभव नहीं है, तथापि अनुमानतः इनकी संख्या बहुत थोड़ी रही होगी। ऐसा लगता है कि अत्यधिक श्रम, कठिन साधना और कठोर आत्म-दमन के मार्ग में राहत पाने तथा अपने बहुमुखी व्यक्तित्व को संपुष्ट एवं संवर्द्धित करने के लिए लोगों ने अभिव्यक्ति का एक नया स्रोत खोज लिया था। कश्मीरी कविता का यह काल वचनकाल या गीतकाल कहलाता है।

सोलहवीं शताब्दी के 'वचन' अथवा गीत छोटी-छोटी संगीतमय काव्य-रचनाएँ हैं। इन रचनाओं का कोई लिखित विवरण प्राप्त नहीं होता। हाँ, कुछ

नमूने सूफ़ियाना कलाम अथवा शास्त्रीय संगीत की पुस्तकों में अवश्य मिलते हैं जहाँ प्रत्येक रचना के स्वर, ताल, राग और समय का निर्देश स्पष्टतया अंकित किया गया है। कुछ 'वचन' (गीत) कश्मीर के लोकप्रिय लोकनृत्य 'रोफ' के माध्यम से हम तक पहुँचे हैं जबकि कुछ गीत इसलिए सुरक्षित रह पाये हैं क्योंकि व्यावसायिक और अव्यावसायिक दोनों तरह क कलाकारों ने समय-समय पर विवाहोत्सवों तथा अन्य समारोहों में समूहगान के रूप में इन गीतों का प्रयोग किया। छंदबद्धता, मध्यवर्ती लय, अन्त्यानुप्रास एवं स्वरसमता के कारण इन गीतों की मधुरता खूब बढ़ी है। कश्मीरी में स्वरों एवं अर्द्धस्वरों की मात्रा अधिक होने के कारण यह खूबी इन गीतों में विशेष रूप से आ गयी है। गीत में तीन-तीन या चार-चार चरणों के प्रत्येक छंद के अन्त में एक टेक पद-पंक्ति रहती है जो लय के उतार-चढ़ाव की भी इसमें व्याप्त रहती है। यहाँ यह ध्यातव्य है गीत-विधा के प्रचलित होने तक कश्मीरी काव्य-रचना में संस्कृत के छंदों का स्थान फ़ारसी के छंदों ने लेना प्रारम्भ कर दिया था, हालाँकि फ़ारसी क सभी तरह के छंदों को प्रयोग मे नहीं लाया गया।

यद्यपि कश्मीरी गीत-काव्य पर, फ़ारसी शब्दावली, पद-संयोजन और छद-योजना का प्रभाव रहा, तथापि इन गीतों में फ़ारसी की प्रचलित परिपाटी के विपरीत प्रेयसी (स्त्री प्रेमिका) द्वारा अपने प्रियतम (पुरुष प्रेमी) के लिए प्रकट किये गये मनोभावों को अभिव्यक्ति मिली है। ऐसे काव्य में नारी के नख-शिख सौंदर्य का चित्रांकन करने की ज़्यादा गुंजाइश नही रहती क्योंकि प्रेमाहत प्रियतमा अपनी सुन्दरता का स्वय बखान भला कैसे करे? वह तो, बस, निष्ठुर प्रेमी के आगमन की प्रतीक्षा में आस लगाये बैठी रह सकती है।

कथ्य एवं विचार के स्तर पर गीत में प्रायः बुद्धितत्त्व की कमी देखने को मिलती है। इसमें न कोई नैतिक उद्देश्य रहता है और कोई सन्देश ही। यह प्रेम-दंश से पड़ित एक विरहणी के मुख से निःसृत सीधी-सरल आत्माभिव्यक्ति है। अपने प्रियतम के प्रेम-रस में विरहिणी को सकल संसार सरावोर-सा लगता है और उसे पुष्पों के सुवास में, कोयल के कूजन मे तथा भौंरों के गुंजार मे प्रेमरस के प्रस्फुटन की प्रतीति होती है। ऐसे मे उसके 'लोल' (प्रेम) का प्रियतम के विरह में चिताकुल एवं अवसादजन्य आत्म-निवेदन के रूप मे प्रकट होना स्वाभाविक है। ऐसा लगता है जैसे गीत में अपने आत्म-पीड़न को वाणी देकर विरहिणी नैराश्य से उत्पन्न मन के बोझ को हलका करना चाहती है। प्रेम की विभिन्न भावदशाओं का इन गीतों में सुन्दर निरूपण मिलता है। ये भावदशाएँ प्रेमिका के निःस्वार्थ प्रेम से लेकर उसमें शंका-अविश्वास से जनित रोष-खिन्नता पैदा होने, प्रेमी को विश्वासघाती सिद्ध करने तथा विरह-विभीषिका की अनिवार्यता स साक्षात्कार करने तक की विभिन्न स्थितियों को समेटे हुए हैं। इस प्रकार से यह ग़ज़ल एक भिन्न प्रकार की रचना ठहरती है क्योंकि ग़ज़ल में लौकिक प्रेम से लेकर रहस्य-

वादी विषयों तक के मनोभावों का चित्रण रहता है। वर्ण्य-विषय की इस विविधता के साथ ग़ज़ल में संतुलन और संगति बिठाना उच्चकोटि के साहित्यकारों का ही काम है !

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में रचित इन कश्मीरी गीतों (वचनों) में मनोविनोद अथवा कामोन्माद का आभास भी कम मिलता है। उनमें मिलती है नितान्त शोकाकुलता, स्पृहा, आत्मपीड़ा एवं हताशा से जनित वेदना। प्रेम की पीर को नारी की विनयशीलता एवं संयमन के आवरण में बड़ी कोमलता के साथ इन गीतों में प्रयुक्त किया गया है। ये 'वचन' लोकगीतों की-सी सरलता और स्पष्टता लिये हुए हैं। संगीतात्मकता का पुट इनमें विशेष रूप में देखने को मिलता है। अधिकांश गीत सहज स्वाभाविक मानवीय प्रेम का संदेश देते हैं जो सांसारिक होते हुए भी निष्कपट और निर्मूल हैं। इन गीतों की अपील ऐसे सभी सहृदय व्यक्तियों के मन में सीधे और गहरे तक उतरती है जो प्रकृति की गोद में पलकर बड़े हुए हैं अथवा जो अत्यधिक सुसंस्कृत हैं। इन 'वचनों' में रहस्यात्मकता, नैतिकता या प्रचारात्मकता का तनिक भी पुट नहीं मिलता।

इस युग में रचित गीतों के मूल रचनाकारों का अधिक उल्लेख नहीं मिलता है। तत्कालीन कवियों में गीत-विधा को संवर्द्धित करनेवालों में प्रमुख हबीब उल्लाह नौशहरी और नुंद अकमाल हैं। परन्तु गीतयुग की ख्याति का सेहरा गीत-साम्राज्ञी हब्बा ख़ातून के सिर ही बँधता है। यदि सर्वव्यापी परमात्मा से तदाकार होकर लल योगेश्वरी हब्बा ख़ातून से पहले के युग पर छायी रही, तो सोलहवीं शती का संपूर्ण कश्मीरी काव्य हब्बा ख़ातून को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठापित करता है। हब्बा ख़ातून का बहु-आयामी व्यक्तित्व एक ऐसी नारी और राजरानी तथा संगीतज्ञ और कवयित्री के संस्कारों का मिश्रण है, जिसका समन्वित रूप कश्मीरी काव्य और संस्कृति में घुल-मिलकर आज भी समय-समय पर ऐसे गायकों के माध्यम से उभरकर सामने आता है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उस कवयित्री के व्यक्तित्व की विशिष्टता से प्रभावित रहे हैं।

खेतों से राजमहल तक

श्रीनगर के दक्षिण में स्थित पांपोर और उसके आस-पास के गाँवों की वन-भूमि तथा पर्वतीय अंचल की उर्वर माटी हज़ारों वर्षों से बढ़िया क़िस्म की केसर उपजाने के लिए प्रसिद्ध रही है। कश्मीरी भाषा, साहित्य और संस्कृति को इस उपाऊ क्षेत्र ने बहुमूल्य उपहार (थाती) के रूप में आभामंडित और सदा सुवासित रहनेवाले दो पुष्प दिये हैं—लल्लद्यद और हब्बा ख़ातून। ललेश्वरी, जो लल्लद्यद के नाम से अधिक लोकप्रिय है, कश्मीर के अंतिम हिन्दू नरेश उदयनदेव के राज-वकाल में पांपोर के निकट सिमपोर में जन्मी थीं। यह कश्मीरी भाषा की ऐसी प्रथम ज्ञात महत्त्वपूर्ण कवयित्री हैं जिन्होंने कश्मीरी भाषी जन-समुदाय के काव्य और संस्कृति को यथेष्ट मात्रा में निरंतर प्रभावित किया है। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में इसी क्षेत्र में जिस दूसरी प्रसिद्ध कवयित्री का जन्म हुआ, उसका नाम था हब्बा ख़ातून। जिस गाँव को हब्बा ख़ातून का जन्म स्थान कहलाने का गौरव प्राप्त है, उसका नाम चंदहार है। हब्बा ख़ातून और इस गाँव के नाम की समानता के पीछे किसी दैवी शक्ति का हाथ लगता है, क्योंकि हब्बा ख़ातून का जन्म-नाम 'ज़ून' भी था और 'ज़ून' शब्द संस्कृत ज्योत्स्ना, प्राकृत जोणहा से व्युत्पन्न है, जिसका कश्मीरी में अर्थ है चन्द्रमा। चंदहार, जिसकी व्युत्पत्ति चन्द्रेश्वर, (स्टाइन के अनुसार) से हुई है, का अर्थ है चन्द्रमा का स्वामी (ईश्वर)। ज़ून का पिता आवदी राथर अच्छी-खासी संपत्ति वाला किसान था।

कुछ विद्वान हब्बा ख़ातून के जन्म-स्थान को लेकर एक दूसरी मान्यता प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार हब्बा ख़ातून का जन्म झेलम-घाटी के उत्तर में स्थित गुरेस के निकट एक कंदरा में हुआ था। एक अन्य जनश्रुति गुरेस में चूरवन के निकट एक स्थान-विशेष के साथ कवयित्री के जन्म-स्थान का सम्बन्ध जोड़ती है। आज भी इस स्थान-विशेष को 'हब्बा ख़ातून की टेकरी' के नाम से जाना जाता

है। अपनी मान्यता की पुष्टि में ये विद्वान् जिस किंवदंती को आधार बनाते हैं, वह इस प्रकार है :—

हब्बा ख़ातून गुरेस के एक साधारण से सरदार की बेटी थी। अपने क़र्ज़ की अदायगी के तौर पर उसने अपनी बेटी हब्बा ख़ातून को एक मालदार कश्मीरी व्यापारी हयावांड को सौंप दिया। हयावांड ने उसका विवाह अपने पुत्र हबलाल से किया और तभी से वह हब्बा ख़ातून कहलाई। यह विवाह-सम्बन्ध में अधिक दिनों तक चला नहीं। फलस्वरूप, हब्बा ख़ातून अपने मन का दुःख-दर्द गीतों में ढालने लगी। तभी दरदिस्तान और गुरेस में रहनेवाली दरद जाति का यूसुफ़शाह हब्बा ख़ातून के इन दर्द-भरे गीतों से आकृष्ट हुआ और उसने उसके साथ विवाह किया। यूसुफ़शाह चक का जब सारा राजपाट छिन गया और वह निर्वासित जीवन बिताने लगा तो हब्बा ख़ातून ने महलों को त्याग दिया और आबदी राथर नाम के एक व्यक्ति के घर में शरण ली।

उक्त जनश्रुति में नामों और घटनाओं के सुन्दर तालमेल ने यद्यपि इस वृत्तान्त को बहुलांश में विश्वसनीय बना दिया है, तथापि पहलीवाली यह मान्यता कि हब्बा ख़ातून चन्दहार की रहनेवाली थी, अधिक युक्ति-संगत ठहरती है। हब्बा ख़ातून के गीतों में न तो गुरेस का और न ही उसके पहाड़ी क़बीले के सरदार पिता अथवा हयावांड का कहीं उल्लेख मिलता है। हाँ, उसके पैतृक गाँव चंदहार का वर्णन अवश्य मिलता है :

'मेरा पैतृक घर चंदहार-बाला में स्थित है।' एक अन्य स्थान पर वह इस बात की स्वयं पुष्टि करती है कि उसका नाम ज़ून और उसके पति का नाम अज़ीज था : 'रे अज़ीज़, अपनी ज़ून से यूँ रूठकर न जा।' एक और गीत में अपने बुरे दिनों की व्यथा को उसने इस प्रकार वर्णित किया है : 'वे (मेरे माता-पिता) दुःख में कराह उठे, हाय ! हमारी ज़ून (चाँद) को कौन-सा ग्रहण लगा गया ?'

ऐसी मान्यता है कि कवयित्री के नाम से विख्यात गुरेस में स्थित 'हब्बा ख़ातून की टेकरी' की जो चर्चा विद्वान करते हैं, वह हब्बा ख़ातून का यूसुफ़शाह चक की रानी बनने के बाद की घटना से सम्बन्धित है। और जैसा कि बताया गया हब्बा ख़ातून का पिता आबदी राथर चन्दहार का रहनेवाला था तथा वह एक सम्पन्न किसान था। एक पद्य में कवयित्री इसकी पुष्टि करती है : 'मेरे माता-पिता अच्छी हैसियत वाले थे, तभी मेरा नाम हब्बा ख़ातून पड़ा।'

हब्बा ख़ातून अपनी रचनाओं का कोई प्रामाणिक साक्ष्य अपने पीछे नहीं छोड़ गयीं हैं। वे सारे गीत जो इस कवयित्री के नाम से प्रचलित हैं, हम तक या तो संगीत-रचनाओं के अभिलेख के रूप में या फिर मौखिक परम्परा से पहुँचे हैं। कुछ समय पूर्व कवयित्री के गीतों का एक संकलन जम्मू और कश्मीर राज्य की भाषा, कला और संस्कृति अकादमी ने प्रकाशित किया था। कतिपय विद्वानों ने आपत्ति

की है कि उक्त संकलन में हब्बा ख़ातून के जो गीत दिये गये हैं, उनमें अधिकांश की प्रामाणिकता संदिग्ध है। ये विद्वान कवयित्री की जीवनी पर प्रकाश डालनेवाले ऐसे उद्धरणों, विशेषकर उन चार उद्धरणों की प्रामाणिकता पर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया चुका है। वैसे, अधिकांश विद्वान् यही मानते हैं कि उसका जन्म आवदी राथर के घर हुआ था, जन्म के समय उसका नाम ज़ून रखा गया तथा उसके पहले पति का नाम अज़ीज़ था।

जिस समाज में साक्षरता का प्रतिशत इस समय भी लगभग तीस प्रतिशत हो, उस समाज में आज से चार सौ वर्ष पूर्व रहनेवाली गाँव की लड़की हब्बा ख़ातून को लिखने-पढ़ने की प्रत्येक सुविधा मिली होगी, ऐसा सोचना अतिरंजनापूर्ण होगा। मगर, लगता है कि वह समझदार लड़की थी। उसका पिता आवदी राथर भी कम उत्साही एवं दूरदर्शी नहीं था। लोक-निंदा अथवा सामाजिक रूढ़ियों की चिन्ता किये बिना उसने अपनी बेटी को शिक्षा दिलाने के लिए उस समय की रीति के अनुसार गाँव के मौलवी साहब के पास भेजा। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज़ून (हब्बा ख़ातून) में पढ़ने-लिखने के प्रति शुरू से ही जिज्ञासा का भाव था। कवयित्री ने उस समय की शिक्षा-पद्धति में व्याप्त शारीरिक दण्ड के विधान का एक-आध स्थान पर उल्लेख भी किया है। कुछ समय पूर्व तक (रूढ़िवादी) कट्टर पंथी स्वभाव के शिक्षक अपना अनुशासन मनवाने के लिए शिष्यों को कठोर शारीरिक दण्ड देने के लिए बदनाम थे। फलस्वरूप, अनेक शिष्यों को इस कड़े अनुशासन की यातना से मुक्ति पाने के लिए अपनी लिखाई-पढ़ाई ही छोड़ देनी पड़ती थी। हब्बा ख़ातून कहती है :

'माता-पिता ने मुझे शिक्षार्जन के लिए बहुत दूर भेजा लेकिन वहाँ शिक्षक ने बेंत से मेरी खूब पिटाई की···।'

विषम परिस्थितियों के बावजूद हब्बा ख़ातून के माता-पिता ने बड़े धैर्य और मनोबल का परिचय देकर अपनी बेटी को समुचित शिक्षा देने में कोई कोर क़सर नहीं छोड़ी। प्रारंभिक शिक्षा के रूप में उसे क़ुरान की तालीम दी गई। उस समय चूँकि फ़ारसी भाषा को राजाश्रय प्राप्त था, इसलिए उसने फ़ारसी के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय ग्रन्थों को भी पढ़ लिया। बस, इन दो-एक घटनाओं को छोड़ हब्बा ख़ातून के आरम्भिक जीवन से सम्बन्धित हमें और कोई विशेष विवरण नहीं मिलता है। यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि उसने 'गुलिस्ताँ' और 'बोस्ताँ' भी पढ़े होंगे क्योंकि कश्मीर में कुछ वर्ष पूर्व तक फ़ारसी सीखनेवाले विद्यार्थियों के लिए इन दो ग्रन्थों का पठन-पाठन करना एक सामान्य बात थी। बहरहाल, यह तय है कि हब्बा ख़ातून की प्रतिभा का यश उसके गाँव चंदहार की सीमाओं को लाँघकर दूर-दूर तक फैल गया था।

ज़ून (हब्बा ख़ातून) को सिर्फ़ किताबी शिक्षा ही नहीं मिली थी, घर और

खेत के अनेक कार्यों में भी वह कुशल थी। अपने पिता तथा गाँव के दूसरे लोगों के संग वह खेत पर काम करती। इसके अलावा ढोर चराती तथा घर के दूसरे कई काम करती। ख़ाली समय में वह अपनी सहेलियों के साथ जंगल की तरफ़ निकल जाती और वहाँ कुकरोधा, चन्दसूर, कास आदि जड़ी-बूटियाँ एकत्र करती तथा रसभरी, शाहबलून, कुकरमुत्ता, गुच्छी आदि जंगली फल-फूल तोड़कर लाती। पानी भरने के लिए वह अपनी सहेलियों के साथ नदी या झरने पर भी चली जाती जहाँ शायद कभी-कभी सिर पर मटके के ऊपर मटका रखने का जोखिम भरा खेल भी खेला करती होगी। माँ ने उसे चरखा कातना भी सिखाया था। प्रकृति के व्यापार को निकट से समझने में मन-बहलाव की इन गतिविधियों ने उसका पर्याप्त ज्ञानवर्द्धन किया। यही कारण है कि उसके गीतों में वनस्पतियों की महक तथा वनफूलों की सुवास बिखरी हुई मिलती है।

कालान्तर में ज़ून के माता-पिता ने उसकी शादी करने का निश्चय किया। ऐसा प्रायः अनुभव किया गया है कि संवेदनशील लड़कियों को अपनी ज़िन्दगी में वैवाहिक सुख बहुत कम नसीब होता है। हब्बा ख़ातून सम्पन्न घराने की लड़की थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी कम नहीं थी। वह अत्यधिक सुन्दर थी तथा उसका कंठ-स्वर भी बहुत ही मधुर था। घर बसाने के लिए हर प्रकार के वांछित कार्य में वह कुशल थी। कालांतर में माता-पिता ने अज़ीज़ नाम के एक युवक से उसकी शादी तय कर दी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वह लड़का कुलीन परिवार का रहा होगा वर्ना ज़ून जैसी कार्यकुशल और कलाप्रिय लड़की से उसका यह रिश्ता पक्का न हुआ होता। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि वह शिक्षित तो दूर, साक्षर भी रहा होगा। मानवसुलभ गुणों के नाम पर उसमें मात्र कुलीनता थी और कुछ नहीं। ज़ून के साथ न उसकी रुचियाँ मेल खाती थीं और न ही विचार मिलते थे। एक तरह से वह एक मंदबुद्धि और उजड्ड-गँवार देहाती युवक था। ख़ुदा ने शायद उसे इसलिए पैदा किया था कि वह हब्बा ख़ातून के दिल की कोमल भावनाओं को आहत करे और प्रतिक्रियास्वरूप हब्बा की पीड़ा गीतों में फूट निकले। यदि उसका वैवाहिक जीवन सुख में बीता होता तो इस बात की पूरी संभावना थी कि साधारण नर-नारियों की तरह उसका जीवन भी राग-रंग में व्यतीत हुआ होता। वह काल के गर्भ में सदा-सदा के लिए खो जाती और प्रकृति की अन्यान्य सुन्दर-सुमधुर वस्तुओं की तरह अनजानी और अनचीन्ही ही रह जाती। इसे प्रकृति का वरदान ही समझना चाहिए कि वह अज़ीज़ लोन के सम्पर्क में आयी जिसकी बेरुख़ी, ढिठाई और निष्ठुरता ने उसे कश्मीरी गीतों की रानी बना दिया।

अज़ीज़ हब्बा ख़ातून के प्रति जितना बे-अज़ीज़ (उदासीन) रहा, वह प्रेम दीवानी बदले में उसके प्रति उतनी ही समर्पित और आसक्त रही। अपनी ओर से

पति के दिल में प्रेम की उमंग जगाने में उसने कोई कोर-कसर बाक़ी नहीं छोड़ी।

सम्पूर्ण नारी-जाति में माँ, विशेषकर भारतीय माँ अपनी ममता, कोमलता तथा त्याग के लिए परिचित रही है। मगर, अपने पुत्र की पत्नी (पुत्रवधू) के प्रति उसके कटु-व्यवहार ने सास के रूप में उसकी इस ममतामयी भूमिका को विवादास्पद बना दिया है। लोक-व्यवहार में इस भूमिका में वह एक ऐसी कठोर एवं झगड़ालू नारी के रूप में जानी जाती है जिसका काम परिवार के सभी सदस्यों, विशेषकर अपने पुत्र को बहका-फुसलाकर नववधू के विरुद्ध करना है। भारतीय सास के इस असामान्य आचरण के पीछे कई कारण हो सकते हैं। जैसे, अपने पुत्र के प्रति अत्यधिक लाड-प्यार की भावना या फिर उन यातनाओं की क्षतिपूर्ति, जो वह स्वयं बहू के रूप में भोग चुकी है, या फ्रायड द्वारा निर्दिष्ट कोई अन्य मानसिक ग्रन्थि। इन सभी कारणों से वह अपनी बहू के विरुद्ध, जिसे वह खुद इच्छापूर्वक अपने लड़के के लिए चुनकर लाती है, षड्यन्त्र रचने के लिए बदनाम रही है।

कश्मीरी कवयित्रियों का यह दुर्भाग्य रहा है कि उनका विवाह ऐसे घर परिवारों में हुआ जहाँ संकीर्ण, स्वार्थी और निर्दय मनोवृत्ति वाली औरतों (सासों) का आधिपत्य रहा। कश्मीरी भाषा की प्रथम प्रमुख कवयित्री, ललद्यद की सास एक ऐसी ही कठोर और निर्दयी औरत थी जो अपनी बहू की खाने की थाली में पत्थर रखकर उसके ऊपर भात की एक हल्की-सी परत रखती, यह जताने के लिए कि उसकी बहू बहुत खाना खाती है। सत्रहवीं शताब्दी की एक अन्य कश्मीरी संत कवयित्री रूपभवानी के ससुराल वाले भी कुछ ऐसे ही स्वभाव के थे। अपनी ससुराल वालों की यंत्रणाओं से तंग आकर ही वह घर छोड़कर जंगलों में अध्यात्म-साधना करने पर बाध्य हो गई थी। इसी प्रकार अठारहवीं शती की कोकिला अरणिमाल को भी अपने पति के घर में कोई सुख नहीं मिला। उसे सारी उम्र अपने मायके में गुज़ारनी पड़ी और वहीं पर उसने आत्मवेदना को गीतों में ढाला। ठीक इसी प्रकार आबदी राथर की लाडली बेटी जून को भी अपनी ससुराल में सास के कठोर, निर्मम और प्रतिकूल व्यवहार का शिकार होना पड़ा।

हब्बा ख़ातून को प्रकृति ने अनुपम सौन्दर्य और सुरीला कंठ दिया था। मगर यह सब होते हुए भी उसे अपने पति के घर और खेतों पर एक दासी की तरह काम करने को बाध्य होना पड़ा। उसकी दिनचर्या सवेरे-सवेरे नदी पर पानी भरने से शुरू हो जाती। इसके बाद उसे जंगल में लकड़ियाँ बटोरने के लिए भेजा जाता। इसके उपरान्त वह चरखा कातती तथा उस समय की रीति के अनुसार घर के और कई तरह के श्रमसाध्य कार्य करती। इतना सब करने पर भी उसके काम की प्रशंसा नहीं होती। उसकी सास और उसका पति इस मौक़े की तलाश में रहते कि कब हब्बा ख़ातून से छोटी-मोटी कोई चूक हो और उस अबोध और निरीह को डाँटने-फटकारने अथवा प्रताड़ित करने का उन्हें अवसर मिल जाए।

कभी यदि भूल से उस बेचारी से मे पानी भरते समय घड़ा हाथ से छूट जाता तो निर्दयी सास उसको खूब पीटती और नया घड़ा लाने को कहती या फिर टूटे घड़े के पैसे रखवा लेती। कभी यदि रात को देर तक चरखा कातते-कातते उसकी आँख लग जाती तो सास उसके बाल पकड़कर जोर से झिझोड़ती। अपनी इस वेदना-जन्य अनुभूति को कवयित्री ने एक गीत 'चारअकर म्योन मालिन्यो···' में वर्णित किया है। इस प्रसिद्ध गीत में हब्बा ख़ातून ने विवशताजन्य आत्मपीड़ा को वाणी देकर ससुराल में बहू को मिलनेवाली यन्त्रणाओं का मार्मिक चित्रण किया है।

हब्बा ख़ातून का पति यदि थोड़ी-सी भी सदयता का परिचय देकर अपनी पत्नी से प्रेम के दो बोल बोल देता, तो उस बेचारी को बहुत बड़ा सहारा मिल जाता। मगर वह उजड्ड अपनी माँ से कम निष्ठुर और निर्मम न था। वह तो ऐसे व्यक्तियों में से था जिन्हें उनकी ईर्ष्यालु माताएँ अपनी पत्नियों की चौकसी और जासूसी करने के लिए उत्प्रेरित करती रहती हैं। कोई और व्यक्ति होता तो जून जैसी सुन्दर और सुशील पत्नी के दिल को जीतने के लिए बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी देने से भी नहीं हिचकता। मगर उस निष्ठुर ने हब्बा ख़ातून के रूप-गुण की कोई क़द्र नहीं की। हब्बा ने अपनी ओर से पति की रुचियों को बदलने का खूब प्रयास किया ताकि उसके पति में उसके प्रति थोड़ी-सी दया-ममता जाग जाए। अपने 'छाव म्यान्य् दआन पोशं' (मेरे खिले अनार-पुष्पों का आनंद ले ले) गीत में उसका यह प्रयास द्रष्टव्य है—

गुलदस्ता सजाया है मैंने तेरे लिए रे,
मेरे खिले अनार-पुष्पों का आनंद ले ले।
मैं हूँ धरती
तू आकाश है मेरा
आवरण तू है
मेरे रहस्यों का
मैं इक व्यंजन हूँ
अतिथि तू मेरा प्यारा,
मेरे खिले अनार-पुष्पों का आनंद ले ले।

लैला ने अँधियारे में
इक ज्योति थी जलाई
होश खो बैठी थी
इस सारे संसार का
तू ही मेरा दीपक

मैं दन पतंग मँडरायी
मेरे खिले अनार पुष्पों का आनन्द ले ले।

उम्र की यह बहार मेरी
बीती जाय है हौले-से
मुरझाये न यह चंपा कहीं
ओ न मेरे बाग़ के बुलबुल !
दम भर के लिए आकर
गुल का शबाब पीता जा
मेरे अनार-पुष्पों का आनन्द ले ले।

बड़े चाव से छेड़ रही हूँ
यह मधुर—मस्त तराना
देदर्दी सुना न तूने
मेरे दिल का फ़साना
बोल, कौन-सी कमी
प्रिय, तूने यहाँ जाना ?
मेरे खिले अनार-पुष्पों का आनन्द ले ले।

तरह-तरह के सारे मटके
किस कुम्हार ने बनाये ?
हरेक पर काढ़े हैं उसने
प्यारे-प्यारे-से बेल-बूटे
बन गये कुछ टेढ़े-मेढ़े
तो कुछ बने मन-भाये
मेरे खिले अनार-पुष्पों का आनन्द ले ले।

पशमीने का नर्म-नर्म पहरावा
मैंने तेरे लिए है बनाया
रूठ के न जा अब तू कहीं
मुझसे मेरे 'अज़ीज़'
सपना सपना ही रहा
दुखियारी 'हब्बा ख़ातून' का
मेरे खिले अनार-पुष्पों का आनन्द ले ले।

प्रेम की ऐसी भावपूर्ण याचना करने पर भी उसके पति के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। उल्टा, जून के प्रति अज़ीज़ की उदासीनता बढ़ती ही चली गई। प्रायः ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों में औरतें मार्ग-दर्शन के लिए साधु-महात्माओं की शरण में जाती हैं। हब्बा ख़ातून भी ख़्वाजा मसूद नाम के एक संत के पास अपना दुखड़ा कहने के लिए गयी होगी। संत ने धीरज बँधाया—'तेरा भविष्य अवश्य सुखमय होगा।' कहते हैं, उसी संत ने उसे हब्बा ख़ातून नाम दिया जिसे बाद में जून ने अपना लिया।

हब्बा ख़ातून का दाम्पत्य जीवन दिनोंदिन दारुण होता गया। कोई भी युक्ति उसके कुण्ठित जीवन को क्षण-भर के लिए भी आनंदित न कर सकी। यह सब होते हुए भी वह प्रेम-मतवाली अपने निर्मम पति को बराबर प्रणय-निवेदन करती रही। 'लदयो दआन पोश त ही' (मैं अनार और जूही के फूलों का गुलदस्ता बनाऊँगी) गीत देखिये—

कैसे बिताऊँगी ये दिन
तेरे बिना, ओ साजन !
मैं तो तेरे लिए अनार और जूही के फूलों का गुलदस्ता बनाऊँगी।

थक गई मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते
तुझे पहाड़ों और जंगलों में
बहकाकर ले गईं
कौन परायी नारियाँ ?
अब तो आ
मुझ दुखियारी को है
तेरा ही इंतज़ार
मैं तो तेरे लिए अनार और जूही के फूलों का गुलदस्ता बनाऊँगी।

किस खता पर, ऐ हरजाई
मेरे कोमल दिल पर
तूने दराँती चलायी ?
वार पे वार किया
मुझ मासूम को मार ही दिया
मरा जो एक बार
वह लौटकर आया नहीं
मैं तो तेरे लिए अनार और जूही के फूलों का गुलदस्ता बनाऊँगी।

मस्त है तू
अपनी ही मस्ती में,
प्रेम का निभाना
तू भूल गया,
अब तो आ जा रे निर्मोही
आँसू 'हब्बा ख़ातून' के थमते नहीं
मैं तो तेरे लिए अनार और जूही के फूलों का गुलदस्ता बनाऊँगी।

स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ती ही चली गयी और उसने यह समझ लिया कि अब इस हालत में ज़िंदगी बिताना मौत से भी बदतर है। इस बात का अंदाज़ वह लगा न पायी कि उसके निर्दयी पति को उसके मरने से भला क्या हासिल होने वाला है? 'वे क्योंह् वाती म्यानि मरनय' (क्या मिलेगा तुझे मेरी मौत से?) गीत के प्रारम्भ में वह आत्महत्या पर विचार करती है, मगर गीत की आखिरी पंक्तियाँ उसके आत्मनिरीक्षण से युक्त मोहभंग की सूचना देती हैं :—

गुनाह मेरे माफ़ करना, या खुदाया,
क्या मिलेगा तुझे भला मेरी मौत से?

जा रही हूँ पीड़ा में
गुज़रेंगे कैसे ये दिन?
चंपा थी मैं हरी-भरी
अब तो जैसे फीकी पड़ी
दिल में कैसी ये आग लगी
क्या मिलेगा तुझे भला मेरी मौत से?

अनगिनत ख्वाहिशें, ऐ दिल
अपने ऊपर तूने लादीं
पर क़ब्र में जाएगा
खाली हाथ ही
वक़्त है अभी भी
तू होश में क्यों आता नहीं
क्या मिलेगा तुझें भला मेरी मौत से?

तीसों सिपारे[1] मैंने
लगातार पढ़ लिये
शब्दों में कहीं मैं नहीं अटकी
मगर गीत प्रेम का
कौन पढ़ सका एक ही बार में ?
क्या मिलेगा तुझे···

प्रेम के गीत को हब्बा ख़ातून ने अवश्य ही एक से अधिक बार पढ़ा होगा। लगता है बहुत दिनों तक उसकी आशा की डोर टूटी नहीं। यद्यपि उसकी इच्छाएँ धीरे-धीरे कुण्ठित होती गयीं, तथापि दाम्पत्य-जीवन के उल्लास और आनन्द की वह अब भी कभी-कभी मन ही मन कल्पना किया करती, जिससे उसे सुख की अपूर्व अनुभूति होती। ऐसे सुखद क्षणों में कवयित्री के संवेदनशील हृदय से जो उद्‌गार निकले, वे कुण्ठाजनित तो थे किन्तु कवयित्री की आशा की डोर' उनमें कहीं टूटी हुई नज़र नहीं आती। अपने एक प्रसिद्ध गीत 'वलो म्यानि पोशे मदनो' (मेरे फूलों के राजा, अब तो आ जा रे) में कवयित्री ने पति की बेरुख़ी से उत्पन्न अपने मन की पीड़ा और कड़वाहट को चित्रमय ढंग से यों वर्णित किया है :—

चुरा के दिल मेरा, कहाँ दूर तू चला गया
ओ मेरे फूलों के राजा, अब तो आ जा रे !

चल री सखी, जूही के फूल तोड़कर लाएँ
मर गये अगर, तो यह ज़िंदगी कहाँ से लाएँ ?
क़सम है मेरी, हरदम तू खुश रहना मेरे प्रिय
ओ मेरे फूलों के राजा, अब तो आ जा रे।

चल री सखी, कर्णफूल चुनकर लाएँ,
किस्मत का जंजाल अब शायद ही छूट पाए
मेरी जग-हँसाई का सबको मिला है कैसा बहाना रे
मेरे फूलों के राजा, अब तो आ जा रे।

---

1. सिपारा=क़ुरान का एक परिच्छेद
'स्यपारअ त्युह मरअ परेम अकि आनो
फेरअ नो कुनि गोम जेरि जवरे···।'

चल री सखी, चमेली तोड़कर लाएँ,
पीड़ा के घाव अब सहे न जाएँ
सुध लेने को उसने किसी को न भेजा रे
मेरे फूलों के राजा अब तो आ जा रे।

चल री सखी लकड़ियाँ काटकर लाएँ
वैरी मेरे उसे न जाने कैसे-कैसे बहकाएँ
कान धरे उनकी बातों पर कैसा वह अनजाना रे
मेरे फूलों के राजा अब तो आ जा रे।

चल री सखी, पानी भरकर लाएँ
दुनिया सो रही है, उसे न जगाएँ
मुझे तो बस उसका जवाब मँगाना रे
मेरे फूलों के राजा···

प्रियतम, मुझसे घृणा करना छोड़ दे,
मुझे तो बस तेरी ही तमन्ना है
यह संसार तो आना जाना रे
मेरे फूलों के राजा, अब तो आ जा रे।

और इस तरह अपने पति के प्रति उत्कट प्रेम-भावना को रेखांकित करता हुआ हब्बा ख़ातून का यह भावपूर्ण गीत समाप्त हो जाता है।

मानवीय संवेदनाओं को जिस सहजता और सच्चाई के साथ उक्त गीत में अभिव्यक्ति मिली है, वह कवयित्री की निश्छल भावानुभूति का प्रमाण है। अपनी भाव-गहनता, विचार मौलिकता, शोकाकुलता, सार्वभौम सम्प्रेषणीयता, मुहावरे की सरलता तथा लालित्यपूर्ण पद-संयोजना के कारण इस गीत की गणना कश्मीरी काव्य की सर्वश्रेष्ठ गीत-रचना के रूप में होती है। जड़ और चेतन पदार्थों के बीच जिस कुशलता के साथ इस गीत में सामंजस्य स्थापित किया गया है उसने जीवन और जगत् में व्याप्त संवेदना की समस्वरता को बड़ी आसानी के साथ अन्वेषित किया जा सकता है।

मन की बढ़ती व्यथा को कवयित्री अब और ज़्यादा सह न पायी। तभी वह पति के लिए अधिकाधिक उत्सर्ग करने के लिए लालायित रही। यहाँ तक कि उसने उसे अपने सोने के समस्त बहुमूल्य आभूषण तक दे देने की पेशकश की। उसके दिल में हूक-सी उठी : 'सारी दुनिया सोती है तो मेरे दिल को अनिद्रा कचोटती है।

इसलिए पानी भरने को निकलती हूँ कि शायद तुम राज़ी हो जाओ।' मगर, उसके बदमिज़ाज पति को राज़ी होना नहीं था और न ही वह हुआ। उसकी सभी याचनाएँ जैसे शून्य में खो गईं। पति और सास मिलकर उसे पहले से भी ज़्यादा सताने लगे और वह प्रताड़िता अपनी वेदना को गीतों में ढालकर राहत ढूँढ़ने का प्रयास करने लगी। उसे इस बात का एहसास हो चला था कि उसके निष्ठुर पति में प्रेम की ज्योति जगाना या फिर निर्दयी सास में सहानुभूति का भाव पैदा करना अब सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में कुण्ठा, विरक्ति, किंकर्त्तव्यविमूढ़ता, पीड़ा आदि से त्रस्त किसी भी नवयौवना के पास आख़िरी रास्ता यह रह जाता है कि वह सहायता और सान्त्वना के लिए अपने मायके वालों से फ़रियाद करे। हब्बा ख़ातून की व्यग्रता और विलाप का वर्णन उसके एक गीत "चारअकर म्योन मालिन्यो" (मायकेवालो, मेरा कष्ट निवारो) में सजीवतापूर्वक हुआ है :—

ससुराल में सुखी नहीं हूँ मैं
मायकेवालो, मेरा कष्ट निवारो।

घर से निकली थी पानी भरने को
मटका हाथ से छूटा, मेरे मायकेवालो,
या तो इसके बदले मटका लाकर दो
या फिर मटके के दाम चुका दो
मायकेवाला, मेरा कष्ट निवारो।

यह यौवन अब ढलने लगा है।
टीलों पर चढ़ाई अब मुझसे नहीं होती।
ढेले इकट्ठे करते पैरों में छाले पड़े हैं
नमक छिड़कते हैं सभी, मुझे सम्भालो
मायकेवालो, मेरा कष्ट निवारो।

चर्खा कातते-कातते आँख जब लगी मेरी
धागा टूट गया तब मेरे चर्खे का
सास ने फिर ज़ोर से खींचे बाल
मौत-सी पीड़ा हुई, मुझे बचा लो
मायके वालो, मेरा कष्ट निवारो।

प्रियतम के विरह में विकल हो उठी
जीवन भार बन गया, इसे ढो रही

मायकेवालो, तुम्हें कर रही सावधान
हब्बा ख़ातून के संकेतों को समझ लो
मायकेवालो, मेरा कष्ट निवारो ।

जिस औरत का पति ही उसे अपमानित करे, उसे ससुराल में क्या इज़्ज़त मिल सकती है भला ? उसे तो बस कठोर परिश्रम करते रहना है और प्रतिदान की आशा भूलकर भी नहीं करनी है । निराश और निःसहाय हब्बा ख़ातून को भी रोटी के दो टुकड़ों की ख़ातिर ससुराल वालों के कपास के खेत पर कठोर शारीरिक श्रम करना पड़ा । कभी वर्ड्सवर्थ ने भी 'सौलिटेरी रीपर' की मनोव्यथा सुनी थी और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि वह अपनी नहीं बल्कि प्रकृति की व्यथा, चिन्ता या अभाव को गा रही है । कुछ इसी तरह जून की आँखों में आँसू भरकर टूटे दिल से अपने ससुरालवालों के खेत पर कभी अकेले दम खुदाई करती, हल चलाती, फ़सल काटती और कभी दर्द-भरे गीत गाती । कोई राहगीर वहाँ से गुज़रता तो एक बार अवश्य रुक जाता या फिर हौले से आगे बढ़ जाता । एक दिन खेत के आसपास की सारी प्रकृति हब्बा ख़ातून के एक मर्मस्पर्शी गीत 'चार कर म्योन···' की मधुर लय से गुंजरित हो रही थी । कवयित्री सूर्य, आकाश, मेघ, पवन, पहाड़ों, वादियों, फूलों और पक्षियों को साक्षी बनाकर अपने दर्द को हल्का कर रही थी । तभी वहाँ से सजे-सजाये घोड़े पर सवार सुन्दर परिधान में सुसज्जित एक नवयुवक गुज़रा जिसके कानों को इस दर्द भरे गीत के मधुर बोलों ने बरबस अपनी ओर खींच लिया । नवयुवक गीत की धुन, सुरसंगति एवं श्रुतिमधुरता से इतना अभिभूत हुआ कि वह अनायास ही इसके गायक की ओर खिंचता चला गया, मानो कोई सपना देख रहा हो । ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, गीत के दर्द-भरे बोल उसे साफ़ सुनाई देने लगे । कुछ ही देर में उसका घोड़ा हब्बा ख़ातून के सामने था । पहली ही नज़र में उस नवयौवना की अनुपम सुन्दरता ने नवयुवक को वैसे ही मोहित कर लिया जैसे कुछ ही देर पहले उसकी गीत की स्वर-लहरी ने किया था । वह नवयुवक और कोई नहीं, कश्मीर के राज-सिंहासन का वारिस शहज़ादा यूसुफ़शाह चक था । अपने सामने खड़ी नैसर्गिक सुन्दरता की जाती-जागती तस्वीर को देख शाहज़ादे के दिल में हूक-सी उठी—"आह, कैसा अलौकिक सौंदर्य है ! बहुमूल्य सौंदर्य की यह मूरत हल चलाने और ढोर चराने के लिए नहीं हो सकती । नैसर्गिक रूप और दिव्य स्वर का ऐसा अद्भुत संगम सचमुच अतुलनीय है ।"

इस अप्रत्याशित मुलाक़ात से दोनों के दिल कुछ देर के लिए विभोर हो उठे । हब्बा ख़ातून ने गाना रोक दिया । संगीत की तरल तरंगें थम गईं और इसी के साथ उसकी आँखें शर्म के बोझ से झुक गईं । इन कुछेक घड़ियों में बहुत कुछ घट गया । चन्दहार गाँव की रूपसी कश्मीर के भावी नरेश के दिल की रानी

बन गई। नवयुवक उस पर मुग्ध हो गया और उसका हाथ माँग बैठा ताकि वह उसके साथ चलकर महल की शोभा बढ़ाए।

रोटी के दो टुकड़ों के लिए जिसे कठोर श्रम करना पड़ता था, भाग्य में जिसके पति की बेरुखी और डाँट-फटकार के सिवा और कुछ भी नहीं लिखा था, सास की कटु आलोचनाओं के अतिरिक्त जिसे समुराल में और कुछ नहीं मिला और निष्ठुर समाज ने जिसे सांत्वना के स्थान पर अवहेलना दी, उस ग्राम-युवती हब्बा ख़ातून ने कभी सपने में यह न सोचा होगा कि कश्मीर के शहज़ादे की संगिनी बनकर वह राजमहल की शान बन जाएगी। अपने पति अज़ीज लोन से उस प्रेम मतवाली ने प्रेम चाहा था, मगर उसे मिली घृणा; समाज से सहानुभूति और सांत्वना की कामना की थी तो बदले में मिला तिरस्कार। अब उसे वह सब मिल गया जिसकी उसने कभी सच्चे मन से कामना की थी। शहज़ादे का प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया और 1570 ई. में वह ग्रामबाला खेतों से निकलकर राजमहल में आ गयी।

यूसुफ़शाह चक के महल में हब्बा ख़ातून किस रूप में प्रविष्ट हुई, इस बात पर विद्वान में मतभेद है। कुछ का मानना है कि अज़ीज लोन से तलाक़ दिलवा कर यूसुफ़ शाह ने हब्बा ख़ातून के साथ विधिवत् शादी कर ली थी और वह उसके साथ रानी की तरह रही। अन्य विद्वान् इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि हब्बा ख़ातून यूसुफ़ शाह के हरम (रनिवास) की एक सदस्या-मात्र थी और उसका दर्जा एक रखैल से बढ़कर नहीं हो सकता था। दुर्भाग्य से इस बारे में किसी भी इतिहास-ग्रन्थ में हमें सही जानकारी नहीं मिलती है। संस्कृत के जाने-माने इतिहासकार शुक पंडित, जो हब्बा ख़ातून के समकालीन थे और जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों जोनराज और श्रीवर द्वारा लिखित कश्मीर के इतिहास को 1600 ई० तक बढ़कर पूर्ण किया, ने भी इस कवयित्री के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है। यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण ज़रूर है मगर आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि प्रसिद्ध इतिहासकार जोनराज ने भी अपने इतिहास में यशस्विनी ललद्यद का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। फ़ारसी में लिखित कश्मीर के इतिहास ग्रन्थों यथा, **बहारिस्तान-ए-शाही** (सैयद मुहम्मद महदी रचित), **वाक़यात-ए-कश्मीर** (ख़्वाजा मुहम्मद अंजुम कौल ह्यदमरी), **मुनतखिब-उल-तवारीख** (नारायण कौल आजिज़) और **तवारीख-ए-कश्मीर** (हैदर मलिक चौड़ूरा) आदि में भी हब्बा ख़ातून का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यूसुफ़ शाह चक के निधन के दो-सौ वर्ष बाद जन्मे अब्दुल वहाब शाइक़ ऐसे पहले इतिहासकार हैं जिन्होंने फ़ारसी में लिखित अपने इतिहास में हब्बा ख़ातून के बारे में मामूली-सा उल्लेख किया है। मगर यूसुफ़शाह के साथ उसका सम्बन्ध किस तरह का था, इस बात पर वे भी मौन हैं। पं. बीरबल काचरू के इतिहास **तवारीख-ए-कश्मीर** (रचनाकाल 1835 ई.) में हब्बा ख़ातून के बारे में जो उल्लेख मिलता है, उसके अनुसार वह

रानी नहीं थी। पीर हसन शाह खोयाहामी ने भी कमोबेश इसी बात को दोहराया है। परवर्ती इतिहासकार भी प्रामाणिक सामग्री के अभाव में किसी एक मत को निश्चित करने में असमर्थ रहे हैं।

बहरहाल, लोक-विश्वास के अनुसार हब्बा खातून यूसुफ़शाह की रानी थी। कवयित्री के जीवन-वृत्त के बारे में जो अन्य छोटी-मोटी घटनाएँ अथवा किंवदन्तियाँ मिलती हैं और उनसे तथ्य उभरकर आते हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(1) घाटी के कई भवनों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण स्थलों के नाम कश्मीर की प्रसिद्ध रानियों अथवा महत्त्वपूर्ण कुलांगनाओं के नामों पर रखे गये मिलते हैं, यथा द्यदमर (रानी दिद्दा), आन्त भवन (मेघवाहन की रानी अमृत प्रभा) सदरमर (रामदेव की रानी सुभद्रा), लछमकोल (जलाल ठाकुर की पत्नी लछमा खातून), नूरबाग़ (नूरजहाँ) आदि। गुरेस स्थित 'हब्बा ख़ातून की टेकरी' जिसके बारे में पहले चर्चा हो चुकी है, को यह नाम दिया जाना प्रायः संगत नहीं था, यदि हब्बा खातून रानी के प्रतिष्ठापूर्ण स्थान को प्राप्त न हुई होती।

(2) संगीतकारों ने अपनी रचनाओं में इस कवयित्री को जो महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है वह इस बात का प्रमाण है कि हब्बा ख़ातून की प्रतिष्ठा और गरिमा एक रानी की-सी रही होगी क्योंकि यदि ऐसा न होता तो ईर्ष्यालु प्रकृति के संगीतकार उसे ज्यादा दिनों तक याद न रखते।

(3) एक वृत्तान्त के अनुसार हब्बा खातून ने अपने एक चाहनेवाले कामातुर प्रेमी को जिस प्रकार ठीक किया था, वह सारी घटना अपनी विश्वसनीयता खो देगी यदि यह मान लिया जाए कि हब्बा ख़ातून रानी नहीं थी।

(4) तार-सर और मार-सर के अप्रतिम प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेने के लिए यूसुफ़ द्वारा हब्बा ख़ातून को शायराना अन्दाज़ में ख़त लिखकर अपने पास बुलाने की घटना फीकी हो जायगी अगर हब्बा ख़ातून को यूसुफ़ शाह की रानी न मानकर उपपत्नी मात्र मान लिया जाए।

बीरबल काचरू ने हब्बा ख़ातून की मृत्यु के लगभग ढाई सौ साल बाद और पीर हसन शाह ने उनके भी पचास वर्ष बाद अपने इतिहास ग्रंथ लिखे हैं।

मुहम्मद-उद्-दीन फ़ौक ऐसे प्रथम इतिहासकार हैं जिन्होंने आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व कवयित्री के बारे में लोक-परम्परा से चली आ रही विभिन्न घटनाओं को आकलित कर इस बात पर बल दिया है कि हब्बा ख़ातून यूसुफ़ शाह की रानी थी। फ़ौक साहब की जानकारी के मुख्य स्रोत अन्य लोगों के अलावा पीर ज़ादा गुलाम अहमद महजूर रहे हैं। वैसे, 'बहारिस्तान-ए-शाही' में, जिसके आधार पर फ़ौक को जानकारी मिल पायी थी, हब्बा ख़ातून की कोई चर्चा नहीं मिलती है।

यूसुफ़ शाह चक यद्यपि एक कुशल प्रशासक सिद्ध न हुआ, लेकिन तबीयत से वह एक सुरुचि-सम्पन्न व्यक्ति था। संवेदनशीलता उसमें कूट-कूटकर भरी थी तथा

वह सौन्दर्य, कला और प्रकृति का वह आशिक़ था। थोड़ी-बहुत कविता भी करता था और इस नाते काव्य, संगीत और नृत्य में भी उसका लगाव था। उसके दरबार में संगीतकारों का जमघट लगा रहता। हब्बा ख़ातून जैसी कोकिलकण्ठी के रहने के लिए यह महल रूपी बाग़ निश्चय ही एक उपयुक्त जगह थी। अपनी कला को निखारने में उसे यहाँ हर तरह की प्रेरणा और सुविधा मिली।

कश्मीर में ऐसे कई शासक हुए हैं, जिन्होंने विद्या, बुद्धि और कलाओं को खूब प्रश्रय दिया है। बारहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध शासक हर्षदेव को उसकी कला-प्रियता के लिए आज भी कश्मीर के लोकाभिनय में श्रद्धापूर्वक याद किया जाता है। कल्हण के समकालीन उक्त शासक के लिये प्रसिद्ध है कि वह कलाकारों, अभिनेताओं और संगीतकारों पर मुक्त हस्त से धन लुटाता था। परवर्ती शासकों ने भी, प्रशासनिक योग्यता की दृष्टि से वे चाहे कैसे भी रहे हों, विभिन्न कलाओं तथा कलाकारों को समुचित प्रोत्साहन दिया। राजा-महाराजाओं द्वारा कलाओं के संरक्षण की यह परम्परा मुस्लिम सुलतानों के प्रारम्भिक दौर तक जारी रही। उन्होंने इन कलाओं में सादगी और अनुशासन के समावेश पर विशेष बल दिया। चौदहवीं शताब्दी में मध्यपूर्व एवं मध्य एशिया से सैकड़ों की संख्या में सैय्यद (हजरत मुहम्मद साहब पैग़ंबर के वंशज) तैमूर (1345-1405) के अत्याचारों से तंग आकर कश्मीर में शरण लेने आये थे। उनके कश्मीर में आकर बस जाने से यहाँ की भाषा, संस्कृत, कला आदि पर ईरानी संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। फ़ारसी भाषा को दरबारी भाषा की दर्जा मिला और राजकाज में भी इस भाषा को माध्यम बनाया गया।

कश्मीर के प्रसिद्ध शासक ज़ैनुलाबदीन (1420-70) ने यद्यपि कश्मीरी भाषा और कला को पुनर्जीवित करने का भरसक प्रयत्न किया, मगर फिर भी ईरानी प्रभाव से वे पूर्णतया मुक्त नहीं हुए। इस प्रभाव से कश्मीरी भाषा, साहित्य और कलाओं को एक तरह से लाभ ही पहुँचा। वैसे ही जैसे पहले संस्कृत के प्रभावस्वरूप कश्मीर की भाषा और कलाएँ पर्याप्त मात्रा में समुन्नत हुई थीं। किंवदन्ती है कि पुनर्जागरण काल में कला के अत्यधिक भावमय और स्वच्छन्द स्वरूप चित्रण की ललक में फ्लोरेंसवासियों ने एक युवा अभिनेता को सोने से इतना अधिक मढ़ दिया था कि उसका दम ही घुट गया और वह मर गया। कश्मीरी भाषा और स्थानीय कलाओं के साथ भी कुछ वैसा ही हुआ। इस भाषा और इन स्थानीय कलाओं को कोई तरजीह नहीं मिलीं। फलस्वरूप यह भाषा और कलाएँ गाँव में रहनेवाले अशिक्षित समुदाय, विशेषकर किसान मज़दूर वर्ग की ओर उन्मुख हुई। समाज के उच्च वर्ग में फ़ारसी के ज्ञान को प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाने लगा और शेख याकूब सरफी जैसे अनुभवी विद्वानों को उनके उच्च कोटि के फ़ारसी-ज्ञान के लिए खूब सम्मान मिला। इस काल में हबीब उल्लाह नौ-शहरी और

अकमाल वदख्शी की कश्मीरी में जो काव्य-रचनाएँ मिलती हैं, वे अपवादस्वरूप ही हैं। बादशाह यूसुफ़शाह चक यद्यपि खुद भी यदा-कदा कविता करते थे, मगर उनकी कविता के जो कुछेक नमूने उपलब्ध होते हैं, वे सभी फ़ारसी में हैं, कश्मीरी में नहीं।

हब्बा ख़ातून ने जिस समय महल में क़दम रखा, कश्मीरी भाषा और कला की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। उस पर निराशा, अवहेलना और उपेक्षा के काले बादल मँडरा रहे थे। सुविधापरस्त मनोवृत्ति की कोई और नारी होती तो शायद उसने अपनी सहज मनोभावना को दबाकर कश्मीरी भाषा के मूल्य पर उस समय के विद्वत् समाज में प्रचलित आभिजात्य एवं प्रतिष्ठा की सूचक समझी जाने-वाली फ़ारसी भाषा को ही अपना अभिव्यक्ति-माध्यम बनाया होता। मगर उसे अपनी भाषा और अपनी संस्कृति से बेहद लगाव था जिसकी वजह से उसने ऐसा नहीं किया। कालानुक्रम से विचार करें तो कवयित्री के योगदान को और अच्छी तरह से आँकने में सुविधा रहेगी। कश्मीरी भाषा की आदि कवयित्री और कश्मीरी काव्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त ललद्यद का समय 1335-85 ई० है और उसके समकालीन एक अन्य संत कवि शेख नूरुद्दीन का समय 1377-1440 ई० निर्धारित किया गया है कतिपय गीतों को छोड़ (जो सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में रचे गये और जिनके रचयिता अज्ञात हैं) लगभग एक सौ वर्ष तक कश्मीरी में रचित किसी भी रचना अथवा नमूने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। सौ वर्ष के इस अन्तराल के बाद हब्बा ख़ातून ने पहली बार इस भाषा को उपेक्षा और उदासीनता के निराशाजनक वातावरण से उबारा। प्रसिद्ध कवि-इतिहासकार अब्दुल अहद आज़ाद के अनुसार हब्बा ख़ातून के बाद कश्मीरी काव्य में जिस कवि का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा, वह है प्रकाश भट्ट। इस कवि का आविर्भाव हब्बा ख़ातून के ठीक दो सौ वर्ष बाद हुआ। बीच की कालावधि में जो कतिपय कविताएँ रची गईं, उनका महत्त्व नगण्य है। फ़ारसी के बढ़ते प्रभाव की चिंता किये बिना हब्बा ख़ातून ने उचित समय पर कश्मीरी की जो बहुमूल्य सेवा की, उससे इस भाषा को फलने-फूलने का अवसर तो मिला ही, कश्मीरी काव्य-परम्परा की छोटी-सी धारा काल के गर्भ में विलीन हो जाने से भी बची रह गयी। इस विषय पर अन्यत्र और चर्चा होगी।

इतिहास साक्षी है कि यूसुफ़शाह चक ने हब्बा ख़ातून के असीम रूप-लावण्य में एक बहुमूल्य ख़ज़ाना पा लिया था। अपना अधिकांश समय वह उसी के सान्निध्य में बिताता तथा उसके गीत-संगीत में खोया रहता। यूसुफ़शाह ने उसके हताश और विरक्त मन में प्रेम की नयी उमंग भर दी और एक तरह से वह उस प्रेमोच्छल नवयौवना की जीवनास्था, निष्ठा और अनुरक्ति का केन्द्र-बिन्दु बन उसके प्रेम की धड़कन तथा सपनों का राजा बन गया था। हब्बा ख़ातून ने अपने

दिल में पहले अज़ीज़ लोन को बसाना चाहा था, मगर अब वह जगह यूसुफ़शाह ने ले ली थी। 'प्रेम के गीत' को दूसरी बार पढ़ लेने के बाद हब्बा ख़ातून ने उसके अर्थ को आत्मसात् कर लिया और यूसुफ़शाह को वह सब दे दिया जिसकी अज़ीज़ लोन क़द्र न कर पाया था। 'वह सब' में उस ग्रामबाला की अनुरक्ति, अबोधता, निश्छलता एवं पवित्रता शामिल है, जिसे उसने यूसुफ़शाह पर तनमन से वार दिया। उसने वही किया जो उसकी परिस्थितियों ने उससे करवाया और इसका उसे कोई पछतावा भी नहीं था। दरअसल, यूसुफ़ के सम्पर्क में आने के बाद ही उसे नारी-उचित प्रेम और सम्मान मिला जिसके स्थान पर उसे अज़ीज़ लोन से मिली थी मात्र शारीरिक पीड़ा एवं मानसिक व्यथा। यही कारण है कि बाद में यूसुफ़शाह से बिछुड़ने पर उसके गीत पहले से भी अधिक मार्मिक तथा सहज बन पड़े हैं।

कस्बों और गाँवों का सौंदर्य शाही दम्पति को अधिक सन्तोष न सका, अतः वे दोनों प्रकृति की अनावृत्त सुन्दरता, अप्रतिम शोभा और अतुलनीय उदात्तता का और निकटता से आस्वादन करने के लिए लालायित रहे। ऐसा माना जाता है कि कश्मीर की सुप्रसिद्ध सुषमा-स्थली—'गुलमर्ग'—का सर्व प्रथम पता लगाने का श्रेय यूसुफ़शाह और उसकी रानी को ही है। वे दोनों अवकाश बिताने के लिए यहाँ आते और वन्य पेड़ों की छाया में प्रकृति की अपूर्व शोभा-श्री का आनन्द लेते। अन्य रमणीक स्थलों, जैसे अहरबल, अच्छाबल और सोनमर्ग को भी उन्होंने ही बढ़ावा दिया और संरक्षण प्रदान किया। प्रकृति के विपुल वैभव का आनन्द लेने के लिए वे दोनों गुरेस जैसे दूरस्थ स्थान पर भी गये जहाँ 'हब्बा ख़ातून की टेकरी' नामक एक पहाड़ी अब भी प्रसिद्ध है। उक्त प्राकृतिक स्थानों में पीर-पंचाल क्षेत्र के अहरबल और अच्छाबल नामक प्राकृतिक स्थान बाद में जहाँगीर के शासन काल में और भी विख्यात हो गये।

कवयित्री हब्बा ख़ातून के इस जीवन-काल से सम्बन्धित कुछेक दिलचस्प घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है। कहा जाता है कि एक बार किसी बात पर मनमुटाव हो जाने के कारण यूसुफ़ अपनी एक पर्यटन-यात्रा के दौरान हब्बा ख़ातून को अपने साथ नहीं ले गया। कुछ समय के लिए अपने मन से हब्बा ख़ातून की याद को भुलाने का दृढ़ संकल्प करके वह दुर्गम पहाड़ों को लाँघकर तथा नदियों को पारकर लिदर वादी में पहलगाँव के आगे स्थित लिदर-वट पहुँचा। यहाँ से वह तारसर और मारसर नामक दो झीलों को देखने के लिए चल पड़ा। प्रकृति के अनुपम वैभव की प्रतीक ये जुड़वाँ बहनें (झीलें) एक-दूसरे से उतनी ही निकट हैं जितनी कि मनुष्य के चेहरे पर दो आँखें या वक्ष पर दो उरोज। बर्फ़ की सफ़ेद चादर से ढके शैल-शिखर, पर्वत-मालाओं के दामन में स्थित घने जंगल और उनके ऊपर लहलहाते सब्ज़ चारागाह, निनाद करते निर्मल

शीतल पानी के झरने। प्रकृति के इस नैसर्गिक एवं कल्पनातीत सौंदर्य ने यूसुफ़ को इतना अभिभूत कर लिया कि उसे इस बात का पछतावा हुआ कि हब्बा ख़ातून को अपने साथ न लाकर उसने सचमुच जल्दबाज़ी से काम लिया है। उसने फ़ारसी में एक पद्य की रचना की—

'याद आती है जब मुझे
दो वेणियाँ उस प्रियतम की,
इन आँखों में आँसू रुकते नहीं—
जैसे धार हो तारसर और मारसर की।'

उसने इस पद्य को लिपिबद्ध करके हब्बा ख़ातून के पास भिजवाया जिसने अपने परमप्रिय के निमंत्रण को सम्मानपूर्वक स्वीकार कर लिया और उसके पास तुरन्त चली आई।

यूसुफ़शाह चक के समय राजकाज की स्थिति अत्यन्त विषम एवं उलझी हुई थी। राजनैतिक अथवा प्रशासनिक स्तर पर यद्यपि हब्बा ख़ातून इस जटिलता को सुलझाने की स्थिति में नहीं थी, तथापि अपनी मधुर वाणी और सद्भावनापूर्ण व्यवहार से वह दुःखी जनता की मनोव्यथा को दूर करने का भरसक प्रयत्न करती। उसकी संवेदनशीलता एवं दूरदर्शिता को चरितार्थ करनेवाली एक किंवदन्ती कश्मीर में प्रचलित है, जिससे उसकी अपूर्व कल्पनाशक्ति, कुशाग्रबुद्धि तथा अत्यधिक सहनशक्ति का परिचय मिल जाता है।...हब्बा ख़ातून के रूप-गुण और शील की चर्चा जब चारों ओर फैल गयी तो एक बार एक सनकी नवयुवक मानसिक रुग्णतावश रानी हब्बा ख़ातून की चाह में दुबला होने लगा। राजा के डर के मारे पहले-पहल लोगों ने इस बात का ज़िक्र किसी से भी नहीं किया। मगर जब उस 'खब्ती मजनूँ' का बावलापन दिनोंदिन बढ़ता गया तो हर कोई सोचने लगा कि यह सिरफिरा तो सचमुच बर्बाद हो जायेगा। उसके परिवारवाले काफ़ी दिनों तक यही सोचते रहे कि शायद समय के साथ-साथ उसकी गति-मति लौट आये और वह ठीक हो जाये। मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उल्टा उसका मानसिक-संतुलन बिगड़ता ही चला गया। तब परिवारवालों ने चिकित्सकों, तांत्रिकों एवं सिद्ध-महात्माओं से सम्पर्क किया, मगर कोई भी उसे ठीक न कर सका। उस नवयुवक के परिवार में अगर कोई सबसे ज़्यादा चिंतित थी, तो वह थी उसकी पत्नी। उसे बस यही ग़म खाये जा रहा था कि कैसे उसके पति की यह विक्षिप्तता दूर हो और वह जल्दी से जल्दी ठीक हो जाए। कुछ सयाने लोग यह अच्छी तरह जानते थे कि हब्बा ख़ातून स्वभाव से अतीव दयालु और विचारशील नारी है। यदि उस प्रमादी नवयुवक की दुःखी पत्नी अपने पति के जीवन को बचाना चाहती है तो उसे रानी से कुछ भी न छिपाकर सारी बात साफ़-साफ़ कह देनी चाहिए।

रानी इतनी अच्छी है कि कोई रास्ता ज़रूर निकालेगी।

नवयुवक की पत्नी ने रानी हब्बा ख़ातून से भेंट करने की प्रार्थना की। रानी के सामने जा पहुँचते ही वह लज्जा से अधमरी हो गयी, यह सोचकर कि रानी उनकी बात सुनेगी तो भला क्या सोचेगी? रानी के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से उस दुखियारी का धैर्य बँध गया और उसने अपनी परेशानी का कारण उसे सविस्तार बता दिया। रानी उसके बावले पति की सनक के बारे में जानकर हँस पड़ी। अबला ने निवेदन किया 'महारानी, अपराध क्षमा हो। मेरा पति यदि मुझसे छिन गया तो मैं कहीं की न रहूँगी।'

रानी के दिल में उस अबला के लिए दया-ममता का भाव उमड़ पड़ा और वह सोचने लगी कि इस दुखियारी का कष्ट वास्तव में चिन्तनीय है। उसे एक तरकीब सूझी। उसने उस उन्मादी प्रेमी को अलग से बुलवाया और कहा कि वह उसके साथ दो शर्तों पर प्रेमालाप करने को तैयार है। एक, रात को उसके शयन-कक्ष में बत्ती बिल्कुल नहीं जलेगी और दो, वे दोनों रात-भर एक-दूसरे से एक बात भी नहीं करेंगे। दिवास्वप्न देखनेवाले उस 'मरियल मजनूँ' की रूह ताज़ा हो उठी। उसे लगा जैसे उसकी क़िस्मत खुल गई है। उसने तुरन्त दोनों शर्तों को मान लिया।

इधर, रानी ने उस (नवयुवक की) दुखियारी पत्नी को अलग से बुलाकर उसको अपनी इच्छानुसार बढ़िया से बढ़िया रेशमी, मखमली और ज़री के वस्त्र पहनाये। सर्वोत्तम क़िस्म की इत्र का उसके अंग-अंग पर छिड़काव किया और इस तरह उस स्त्री के शरीर का रोम-रोम प्रेम, आसक्ति और कामेच्छा के मधुर मादक स्पंदन से गुदगुदा उठा। रानी उसे अपने शयन-कक्ष में ले गई और कुछ ही समय बाद उस प्रेमातुर युवक को भीतर बुलवाया गया। भीतर पहुँचकर नव-युवक को कक्ष का वातावरण इतना मस्त और मोहक लगा कि वह सब कुछ भूलकर अलौकिक आनन्द में सराबोर हो गया। कहना न होगा, रानी की यह बुद्धिमतापूर्ण तरकीब काम कर गई। उस नवयुवक की मति लौट आई और वह सामान्य जीवन बिताने लगा।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में भारत पर मुग़ल साम्राज्य की पकड़ मज़बूत हो जाने के बाद अब मुग़ल शासकों की दृष्टि कश्मीर की ओर गई। यूसुफ़ शाह चक, जो 1579 ई. में तख्त पर बैठा, कुशल नेतृत्व के अभाव में धीरे-धीरे लोकप्रियता खो बैठा और घाटी में आन्तरिक कलह एवं झगड़ों ने ऐसा उग्र रूप धारण किया कि एक वर्ष और दो महीने के बाद ही 1580 ई. में उसे सत्ता से हाथ धोना पड़ा और इसी के साथ हब्बा ख़ातून के भाग्य का चक्र भी घूम गया।

यूसुफ़ ने राजपाट को वापस पाने के लिए बड़ी कोशिश की, मगर उसे कोई सफलता नहीं मिली। अगले छह महीने में सत्ता पर एक अन्य शासक का अधिकार

हो गया और असहाय यूसुफ़शाह यह सब अनमने भाव से देखता रहा। आखिर वह शहंशाह अकबर के पास फ़ौजी मदद लेने को पहुँचा। अकबर तब कश्मीर की राजनैतिक गतिविधियों पर बराबर निगाह रखे हुए था। उसने भगोड़े राजा (यूसुफ़शाह) को राजनीतिक शरण दी और अपनी सेना में छोटा-सा पद भी दिया, मगर बहुत दिनों तक फ़ौजी मददवाली उसकी माँग को अटकाए रखा। यूसुफ़ की कुटनीति और सहिष्णुता के लिए यह कठिन परीक्षा का समय था। उधर, महलों में हब्बा ख़ातून यूसुफ़ के वियोग में विकल होरही थी। यूसुफ़ ने इस आशा के साथ कश्मीर से प्रस्थान किया था कि वह कुछ ही सप्ताह में मुग़ल सेना और धन के साथ कश्मीर लौट आयेगा और फिर से दुश्मन को खदेड़कर पुनः राजाधिकार प्राप्त कर लेगा। दिन, सप्ताह और महीने बीत चले, मगर यूसुफ़ के लौटकर आने की कोई भी सूचना हब्बा ख़ातून को नहीं मिली। पति की वापसी में इस अप्रत्याशित देरी से हब्बा ख़ातून का मन शंकित हो उठा—कहीं उसका प्रियतम फिर उससे बिछुड़ तो नहीं गया? यूसुफ़ के विरह में उसके मन का चैन और दिल का क़रार जाता रहा। कूटनीति की सामान्य चालों से अनभिज्ञ वह भावुक-हृदया यही समझती रही कि इतने दिन हो गए, ज़रूर उसके यूसुफ़ को किसी परायी औरत ने बहका दिया है। सम्भवतः उसे इस बात का ज्ञान नहीं था कि अकबर ने उसके यूसुफ़ के मनोविनोद के लिए दो दासी-कन्याएँ बहाल कर दी थीं ताकि वह प्रवास कालीन पीड़ा को भूल जाए। 'नेरी यार छाँडोन' (चल सखी, साजन को ढूँढ़ लाएँ) में कवयित्री गाती है :—

'चल सखी,
साजन को ढूँढ़ लाएँ
पुरानी जगहों पर हो आएँ।
बिछुड़ गया है
जब से वह,
मेरी चाँदनी बदल गयी अन्धकार में
औरों को जब से
अपना बनाया उसने
वह परदेश में दूर लगा रहने।
मेरी गर्दन पर उसने
जैसे खूँख़ार चाकू चलाया
आँसू की लड़ी पिरो गया
मेरे इन कोमल नयनों में।
ढूँढूँगी उसे हर ठौर पर

पहाड़ों के ऊपर
या बीच मैदान में,
क़िस्मत का लेख सखी
कौन बदल सका ?
मुझ चंपा को मुरझा गया
वह निष्ठुर भरी जवानी में।
बादाम के फूलों-सा
खिला मेरा यह यौवन, काश !
वह करता अवलोकन
मुझे तो लगता प्यारा है
मेरा 'यूसुफ़' सलोना
इस सारे संसार में।'

कवयित्री के सहज-सरल मन से निकले भावपूर्ण उद्‌गारों को रेखांकित करता यह गीत घाटी में ही गूँजता रह गया, अकबर के कानों तक बिल्कुल नहीं पहुँचा। पहुँचता भी तो इस दर्द भरे गीत का नीतिकुशल शहंशाह पर शायद ही कोई प्रभाव पड़ता। दरअसल, उसकी कश्मीर पर बहुत दिनों से नज़र थी और यही वजह है कि उसने कुछ वर्ष पहले ही किसी नीति का उल्लंघन करने पर श्रीनगर में स्थित अपने राजदूत को वापस बुलवा लिया था और उसे फाँसी के फँदे में लटकवा दिया था। ऐसी स्थिति में, यूसुफ़ शाह के पास मात्र प्रतीक्षा करने के और कोई चारा नहीं था। इधर, इसका यह हाल था और उधर हब्बा ख़ातून उसकी याद में दिन-ब-दिन घुलती जा रही थी। उसे इस बात का ग़म नहीं था कि उनका राज-पाट चला गया। उसे ग़म था तो इस बात का कि उसका स्वामी उससे बिछुड़ गया है। अपने एक 'छुम वालि तमन्ना' में कवयित्री ने यूसुफ़ के विरह मे अपने अधूरे सपनों को यों वाणी दी है :—

'मुझे उसकी लगन लगी है।
रोम-रोम मेरा प्रेम-विंधा है
सखी, मुझे उसकी लगन लगी।

दीवार के उस पार से
झाँक लिया उसने मुझे
तोश (पशमीने) का शाल
उसके लिए सँजो रखा है मैंने
सखी, मुझे उसकी लगन लगी।

दरवाज़े की ओट से
झाँक लिया उसने मुझे
कौन बता गया
मेरे घर का पता उसे
सखी, मुझे उसकी लगन लगी।'

कवयित्री अपने प्रियतम की एक छवि देखने को तरस रही है। वह ख़यालों ही ख़यालों में उसे कभी झरोखे से तो कभी नदी के तीर पर, कभी प्रभात की सुवासित वेला में तो कभी सूर्यास्त की लालिमा में देखती है। इस सबसे उसकी वेदना बढ़ती ही चली गयी। उसमें तनिक भी कमी नहीं आयी।

नियति ने यूसुफ़ शाह के साथ जो क्रूर उपहास किया, उससे उसका तन-मन टूट चुका था। पूरे ग्यारह महीनों तक वह शहंशाह अकबर के यहाँ उसके इशारों पर नाचता रहा। आखिर एक दिन अकबर ने उसे खोया हुआ राजपाट प्राप्त करने के लिए सैनिक सहायता दे ही दी। परंतु दैव को कुछ और ही स्वीकार था। यूसुफ़ शाह की सहायता के लिए मुग़ल सेनानायक राजा मानसिंह को भी अकबर ने शाही फ़ौज के साथ भेज दिया। लेकिन यूसुफ़ शाह उसे चकमा देकर आगे निकल गया और उसने स्वयं अपने सहयोगियों की मदद से सोपोर के निकट लगातार कई हमले करने के उपरान्त कश्मीर के खोये हुए राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। यूसुफ़ शाह का यह दुःसाहस बाद में कश्मीर और स्वयं उसके लिए बड़ा महँगा सिद्ध हुआ। चिर-प्रतीक्षा की घड़ियाँ खत्म हो गयीं और हब्बा ख़ातून अपने बिछुड़े प्रियतम से जी भरकर मिल पायी। यह दुर्योग ही है कि पुनर्मिलन के इस आनन्द को अभिव्यंजित करनेवाला कवयित्री का कोई भी गीत उपलब्ध नहीं है।

सन् 1581 ई. में यूसुफ़ पुनः सिंहासनारूढ़ हुआ। प्रवास के दौरान यद्यपि उसने पर्याप्त राजनैतिक अनुभव अर्जित कर लिया था तथापि कश्मीर की बढ़ती हुई कूटनीतिक जटिलताओं को सुलझाने में एक कुशल प्रशासक के रूप में वह असफल ही रहा। असंतुष्ट तत्त्व एकजुट होकर पुनः सक्रिय हो गये और उन्होंने यूसुफ़ के खिलाफ़ योजनाबद्ध तरीक़े से संघर्ष छेड़ दिया। इसके लिए उन्हें शह मिली दिल्ली और लाहौर से। यूसुफ़ को मुग़लों की नीयत का पता तब लगा जब 1585 ई. में मुग़ल सेनाओं ने कश्मीर की ओर कूच किया। शक्तिशाली मुग़लों की सीधी सैनिक कार्रवाई जब अधिक सफल नहीं हुई तो उन्होंने कूटनीति से काम लेकर दुविधाग्रस्त यूसुफ़ पर दबाव डालने का तरीका अपनाया। अंततः अपने पुत्र याकूब के बहुत समझाने पर भी यूसुफ़ ने शहंशाह अकबर के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। कश्मीरवासियों को जब पता चला कि उनका राजा समर्पण करने जा रहा है, तो उन्होंने इस अप्रिय घटना को यों तिथिबद्ध किया : 'न्युव गिरफ्तर गो'

(वह गया, गिरफ्तार हो गया—993 हिजरी तदनुसार 1585 ई) इसके बाद यूसुफ़ कश्मीर नहीं लौटा। विहार के बसोक नामक स्थान पर प्रवास के दौरान सात वर्ष बाद (1592 ई. में) उसका निधन हो गया।

यूसुफ़ से विछुड़ जाने के बाद हब्बा ख़ातून के जीवन में एक बार फिर वीरानी छा गयी। वियोग की असह्य पीड़ा को कवयित्री ने अपने गीत 'कम्यू स्वनि म्यानि···'(तुझे मेरी किस सौत ने) में बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

'मेरी किस सौत ने तुझे भरमा लिया
क्यों विरक्त रहमे लगे हो मुझसे पिया ?

छोड़ दो अब यह मलाल
यह गुस्सा, यह उबाल
तुझे मैंने दिल में
कब से है बसा रखा है—
क्यों विरक्त रहने लगे, मुझसे पिया ?

आधी-आधी रात तक
दरवाज़े मैंने खुले रख छोड़े
अनबन कभी हुई नहीं
फिर, रूठके क्योंकर चले गये ?
क्यों विरक्त रहने लगे, मुझसे पिया ?

इस घोर विरह की आग में
मेरा तन-मन झुलस रहा
ढुलक रहे हैं खून के आँसू
हुई सुर्ख मेरी बादामी अँखियाँ
क्यों विरक्त रहने लगे, मुझसे पिया ?

पिघल रही हूँ वैसे ही
पिघले बर्फ़ ज्यों सावन में
जूही थी मैं, खिली पूरी
न तुम आये, न इसका सुवास लिया
क्यों विरक्त रहने लगे, मुझसे पिया ?

रोज़ नहा-धो, करती हूँ सिंगार
तेरी क़सम, प्रिय
मैं अब भी तेरे लिए,
तू अपनी ही धुन में खो चुका जिया
क्यों विरक्त रहने लगे, मुझसे पिया ?

'हब्बा ख़ातून' को है अफ़सोस
बस, इस छोटी-सी बात का
सेवा का बदला बेरुखी से चुकाया
याद आ रही है बीती रंगीनियाँ
क्यों विरक्त रहने लगे, मुझसे पिया ?

यद्यपि हब्बा ख़ातून के गीतों के रचना-क्रम का सही-सही निर्धारण कर पाना सम्भव नहीं है, फिर भी उपर्युक्त गीत से यह अन्दाज़ सहज ही लगाया जा सकता है कि इस गीत में व्यक्त कवयित्री की मर्म वेदना यूसुफ़शाह के कश्मीर से आखिरी बार चले जाने की सूचना देती है। इस तरह, इस गीत से कवयित्री ने अपने वियोग की मर्मांतक वेदना को अन्तिम बार वाणी दी है।

हब्बा ख़ातून को अपने सौतेले बेटे याक़ूब से, जो अब तख्त का मालिक बन गया था, सहायता की कोई आशा नहीं थी। याकूब एक साहसी और बहादुर युवक ज़रूर था मगर दूरदर्शिता उसमें बिल्कुल नहीं थी। दरअसल, उसकी जल्दबाज़ी और अदूरदर्शिता से ही उसके पिता यूसुफ़शाह का इतनी जल्दी पतन हुआ। हब्बा ख़ातून ने महलों का ऐश्वर्य त्याग दिया और वह एक बार फिर जन-सामान्य जैसे साधारण, बेनाम और अज्ञात जीवन की ओर मुड़ चली। यद्यपि उसके जीवन के अन्तिम दिनों का कोई प्रामाणिक ब्योरा हमें प्राप्त नहीं होता, फिर भी इतना निश्चित है कि उसने अपना आखिरी समय व्याकुल चकवी की तरह प्रियतम के विरह में दर्द-भरे गीत गा-गाकर बिताया। इन गीतों में वियोग-जन्य पीड़ा का जिस खूबी के साथ चित्रण हुआ है, उससे इनकी प्रभावात्मकता, तीक्ष्णता और मधुरता में चार चाँद लग गये हैं। इन गीतों में कवयित्री की हताशा एवं विरक्ति का स्पष्ट संकेत मिलता है।

कवयित्री को पूर्वाभास हो गया था कि अब उसके जीवन का सूर्य डूबनेवाला है। अपने एक गीत 'लालो कल आलवय' (तुझ पर यह ज़ान वारूँ) में वह कहती है—

'प्रिय, जान तू मेरी ले ले,
बस एक बार मुझे मिल ले।

पकाए हैं तरह-तरह के पकवान
दूध, भात और लौकी के
प्रेम-मदिरा के ये मधुर प्याले
भर-भर के पी ले, ओ मतवाले
प्रिय, जान तू मेरी ले ले।

दूध धुली रूपहली काया को
मैंने चंदन जल से सिक्त किया
अपने अंग-अंग को
तेरे बिन अब मुझे कौन सँभाले ?
प्रिय जान तू मेरी ले ले।

हिम-शिखरों से ढका चाँद हूँ
प्रिय, छिपकर बैठे हो कहाँ ?
पल-भर की हूँ अब मेहमान
जाने यह प्राण कब निकलें ?
प्रिय, जान तू मेरी ले ले।

किसी पखेरू पर ज़ालिम बिलौटा
अब झपटने ही वाला है
मौत से भला कौन बच पाया है ?
खुद को कर दिया ख़ुदा के हवाले
प्रिय, जान तू मेरी ले ले।

घर छोड़ा किसके भय से
रातें गुज़ारीं तूने, प्रिय
रूठकर क्यों परदेश में,
'हब्बा ख़ातून' अब आगे क्या कहे ?
बस, एक बार मुझे मिल ले।
प्रिय, जान तू मेरी ले ले।'

मुग़लों द्वारा 1586 ई. में कश्मीर पर पूर्ण अधिकार कर लेने के बाद भी हब्बा ख़ातून की प्रिय-मिलन की आशा का दीपक बराबर टिमटिमाता रहा। वह प्रियतम की राह में टकटकी लगाये यही सोचती रही कि शायद उसका बिछुड़ा

यूसुफ़ उसे मिल जाए। यदि राजा बनकर नहीं तो साधारण व्यक्ति के रूप में तो आ जावे। परन्तु उसका यह सपना अधूरा ही रहा। विश्वास किया जाता है कि यूसुफ़ के कश्मीर छोड़ने के बीस वर्ष बाद तक हब्बा ख़ातून जीवित रही। सांसारिकता से मुख मोड़ वह अनासक्त भाव से दर-दर भटकती रही। इस काल के दौरान रचित उसके गीतों से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें प्रिय से मिलन की लालसा और उत्सुकता प्रायः लुप्त हो चुकी है। इन गीतों में अब मिलती है कवयित्री के शोकाकुल मन की वितृष्णा, खिन्नता और उद्वेगजनित आत्मपीड़ा। इस काल के एक गीत 'कांसि म राविन शुरे पान' (हाय, किसी का यौवन व्यर्थ न जाय) में कवयित्री ने अपने जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों का अतीव सुन्दरता के साथ वर्णन किया है :—

'तनमन में लगी है आग,
इसका क्या किया जाय
हाय, किसी का यौवन व्यर्थ न जाये !

माँ-बाप ने बड़ा किया
मिश्री और कस्तूरी खिलाकर,
दूध में नहलाया जिसे चुमकार कर—
बनी मुसाफ़िर अब वह डोलती जाय
हाय, किसी का यौवन व्यर्थ न जाय !

माँ-बाप ने मुझे बहुत दिया प्यार—
नौकर-चाकरों और माल-असबाबों का
भरपूर दिया उपहार
अब यह दिन है देखना पड़ा
बना-बनाया महल ढहता जाय
हाय किसी का यौवन व्यर्थ न जाय !

माँ-बाप ने जब हाथ मेरे पीले किये
गीत मेरी सखियों ने तब खूब गाये
चली आयीं वे दूर तक मेरे पीछे-पीछे
वे गीत सब झूठे निकल आये हाय,
किसी का यौवन व्यर्थ न जाय !

माँ-बाप ने मुझसे कहा था—
"उठ बेटी, तेरा भाग्य जगा
आँगन में कबसे तेरा साजन खड़ा
डोली के वे सब रंग फीके पड़ गये हाय
हाय, किसी का यौवन व्यर्थ न जाय।'

उक्त गीत उन अंतिम गीतों में से एक है, जिसे कवयित्री ने 1592 ई. में यूसुफ़ के निधन से पूर्व रचा था। यूसुफ़ के प्रवास के दो दशक बाद तक उसकी प्रिय रानी हब्बा ख़ातून उसके विरह में विलाप करती रही और अन्ततः प्रेम की पीर और अधूरे अरमानों की पीड़ा को अपनी आँखों में सँजोकर वह विरहिणी सदा-सदा के लिए इस दुनिया से चल बसी। उसकी क़ब्र श्रीनगर छावनी के निकट पांत-छोक नामक स्थान पर है। कश्मीर की काव्य-साम्राज्ञी, सौन्दर्य और संगीत की रानी हब्बा ख़ातून यहीं पर चिर-निद्रा में लेटी हुई है।

हाल ही में, कवयित्री के आखिरी दिनों की जीवनचर्या के सम्बन्ध में एक भिन्न धारणा सामने आयी है। यह धारणा, जो अविश्वसनीय-सी लगती है, वह यह है कि हब्बा ख़ातून यूसुफ़ शाह के विरह को सहन न कर सकी और वह उसे ढूँढ़ने के लिए कश्मीर घाटी से चल पड़ी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रियतम को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह बसोक पहुँच गयी। यह स्थान पटना के दक्षिण में लगभग 75 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। समझा जाता है कि यूसुफ़ को कश्मीर से निर्वासित कर मुग़लों ने उसे यहीं पर रखा। यह कोई नहीं जानता कि जब हब्बा बसोक पहुँची, उस समय यूसुफ़ शाह जीवित था भी या नहीं। यूसुफ़ शाह की क़ब्र के बग़ल में ही एक और क़ब्र मिलती है। लोक-विश्वास के अनुसार यह अनुमान लगाया जाता है कि यह क़ब्र हब्बा ख़ातून की है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि बसोक में यूसुफ़ शाह के साथ दूसरे कई कश्मीरी परिवार भी रहते थे। इनमें उसका पुत्र याकूब भी था, जिसने कश्मीर में मुग़लों के आक्रमणों का मुँहतोड़ जवाब दिया था, मगर बाद में मात खानी पड़ी थी। यूसुफ़ तथा अन्य कश्मीरियों की जो क़ब्रें बसोक में मिलती हैं, ऐसा माना जाता है कि वे कश्मीर घाटी में उपलब्ध होने वाली क़ब्रों की वास्तुकला से काफ़ी मिलती-जुलती हैं।

फ़ारसी को दरबारी भाषा का दर्जा मिल जाने के बाद कश्मीरी भाषा और काव्य पर ईरानी साहित्य और संस्कृति का खास प्रभाव पड़ा ; कहा जाता है कि चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेज़ी भाषा को लंदन में उपेक्षा के भाव से देखा जाता था क्योंकि स्वयं राजा, सभासद्, पादरी तथा शिक्षित समुदाय फ्रांसीसी भाषा का प्रयोग करते थे। ठीक इसी तरह हब्बा ख़ातून के जीवनकाल में भी घाटी की जन-भाषा कश्मीरी का यही हाल था। फ़ारसी के इस व्यापक प्रभाव के बावजूद हब्बा ख़ातून ने कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, यह अपने आप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाएगी।

यहाँ इस बात पर विचार करना अनुचित न होगा कि हब्बा ख़ातून की भाषा एवं शैली को फ़ारसी ने किस रूप में तथा कहाँ तक प्रभावित किया। प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि आधुनिक कश्मीरी ललद्यद के समय कश्मीरी भाषा से उतनी ही भिन्न है जितनी आधुनिक अंग्रेज़ी चॉसरकालीन अंग्रेज़ी से। इस भिन्नता का का मुख्य कारण कश्मीर पर फ़ारसी भाषा और संस्कृति का प्रभाव है। फ़ारसी के प्रभावस्वरूप जहाँ एक ओर कश्मीरी भाषा पर्याप्त मात्रा में समुन्नत हुई वहाँ दूसरी ओर इस प्रभाव की अत्यधिकता के कारण वह इतनी दब गयी कि इस भाषा की अपनी पहचान, शब्द-योजना और शैलीगत विशेषता पर विपरीत असर पड़ा। फ़ारसी के प्रयोग का चलन पहले शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित रहा, लेकिन अब वह जल्द ही पूरी घाटी में फैल गया। परवर्ती-काल के कश्मीरी काव्य में ऐसे अनेक नमूने मिलते हैं जिनमें एक-आध शब्द या एक अक्षर को छोड़ शेष सम्पूर्ण पद-विन्यास ही फ़ारसी प्रधान है। उदाहरण के लिए कश्मीरी के लब्धप्रतिष्ठ काव्यकार मकबूल शाह क्रालवारी (1820-76) जिन्हें कश्मीरी के प्रसिद्ध प्रेमाख्यान गुलरेज़ को लिखने का श्रेय

प्राप्त है, की निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :—

'दरवन्दी जुलफत चीन-ओ-हिन्द
शीरीं दहानस यारकन्द ।'

(तुम्हारी जुल्फ़ें चीन और हिन्द को बाँधने में सक्षम हैं और यारकन्द तुम्हारे मुँह की मिठास पर दयाश्रित है ।)

'दहानस' शब्द के बदले यदि 'दहानत' या 'दहानरा' शब्द प्रयुक्त हुआ होता तो यह पद विशुद्ध फ़ारसी का बन जाता ।

कश्मीरी पर फ़ारसी का प्रभाव यद्यपि हब्बा ख़ातून के आविर्भाव के बहुत पहले से रहा तथापि कवयित्री ने आँखें मूँदकर इस प्रभाव को ग्रहण किया हो, ऐसा कोई उदाहरण उसकी रचनाओं में नहीं मिलता है। फ़ारसी के जिन मूल शब्दों का कवयित्री ने प्रयोग किया, वह नगण्य है। कुछ शब्द, जैसे शमा (दीपक) इश्क़ (प्रेम), बुर्का (पर्दा), आब (पानी) आदि जो कवयित्री ने प्रयुक्त किये, वे उसके साहित्यिक क्षेत्र में उतरने से पूर्व ही लोक-व्यवहार की भाषा में घुलमिल गये थे। अपनी काव्य-रचना के लिए उसने एक ऐसी सर्वसामान्य भाषा का प्रयोग किया, जिसे वास्तव में बहुसंख्यक जनता बोलती-समझती थी। इस भाषा के प्रयोग ने उसकी कविता की संप्रेषणीयता तथा निवेदन को संवर्द्धित कर पाठक अथवा श्रोता के मन में इस भाषा की सहजता, सुमधुरता और संगीतात्मकता के प्रति रुचि एवं आकर्षण को बढ़ाया। यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि इस भाषा के प्रयोग ने पाठकों को इस सच्चाई से भी अवगत करा दिया कि विजातीय भाषा-प्रभाव से मुक्त देशी भाषा (मातृभाषा) में रचे-बसे कवयित्री के गीत सचमुच बड़े ही भावप्रवण एवं विविधतापूर्ण बन गये हैं।

विशुद्धिवादी (प्यूरिस्ट) दृष्टिकोण की हिमायती बन हब्बा ख़ातून ने फ़ारसी की एकदम उपेक्षा की हो, ऐसा सोचना ग़लत होगा। संभवतः वह कश्मीर की एकमात्र ऐसी कवयित्री है, जिसने निम्नलिखित पंक्ति में ठेठ फ़ारसी शब्द 'मोयाना' का प्रयोग किया है—

'म्य हो करय चे किती फम्ब मोयानअ ।'

'फम्ब मोयानअ' एक प्रकार की जाकेट है जो कोमल पशमीने की बनी होती है तथा जिसके भीतर नर्म चमड़ा अथवा मुलायम डैने लगे रहते हैं। हब्बा ख़ातून द्वारा इस शब्द का प्रयोग प्रियतम को भेंट स्वरूप दी जानेवाली दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तुओं की उसकी जानकारी के भाव को सिद्ध करता है। इस प्रयोग में कवयित्री के पांडित्य-प्रदर्शन अथवा सांस्कृतिक-दूषण के भाव को खोजना ग़लत होगा। एक अन्य उदाहरण है—'मालिन्य म्यान्य अरबाब आर्सा' (मेरे माता-पिता हैसियत वाले थे) में प्रयुक्त 'अरबाब' शब्द का प्रयोग भी अत्यन्त सटीक बन पड़ा है। इसी प्रकार कवयित्री ने फ़ारसीनिष्ठ कतिपय सुन्दर अलंकारों को जिस

सहजता और सुविधा से गढ़ा है, वह उसकी प्रखर कल्पना-शक्ति की देन है। 'प्रेम-गीत को कोई भी एक बार में नहीं पढ़ सका' में 'आशकुन ख़त' (प्रेम गीत) का प्रयोग कवयित्री की सुन्दर अलंकार-योजना का संकेत देता है। कुल मिलाकर यदि हब्बा ख़ातून की कविता को कश्मीरी का निर्मल स्रोत कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

हब्बा ख़ातून के वचनों (गीतों) में ललद्यद के वाखों अथवा शेख नूरुद्दीन के श्रुकों के कथ्य के समान कुछ भी नहीं है। दरअसल, कवयित्री ने कश्मीरी को एक नवीन काव्य-शैली दी, जो इसके पूर्व प्रचलित नहीं थी। कतिपय आलोचकों का मत है कि हब्बा ख़ातून की काव्यशैली फ़ारसी काव्य शैली के निकट है। मगर इस स्थापना पर सन्देह व्यक्त किया जाना स्वाभाविक है, क्योंकि कवयित्री ने अपनी शैली को विजातीय शैली के अनुरूप ढाला है, ऐसा कोई ठोस उदाहरण उसकी रचनाओं में दृष्टिगत नहीं होता। उक्त स्थापना को इस आधार पर भी नकारा जा सकता है कि हब्बा ख़ातून ने कविता रचने का अपना क्रम तभी से शुरू किया था जब वह अपने गाँव चन्दहार में रहती थी। काव्य-शैली के चयन के प्रसंग में कवयित्री के समक्ष दो ही विकल्प थे। या तो वह कश्मीरी काव्य-शैली को अपनाती या फिर उस समय के अज्ञात कवियों के गीतों अथवा लोक-परम्परा में रची रचनाओं में प्रयुक्त फ़ारसी की ग़ज़ल-शैली का अनुसरण करती। (कहना न होगा कि कवयित्री ने अपनी शैली को फ़ारसी शैली, और छंद संयोजना का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि कश्मीरी हिन्दुओं की रूपान्तरित रामायण (रामावतारचरित) जैसा महाकाव्य भी इस प्रभाव से अछूता न रह सका।

हब्बा ख़ातून ने फ़ारसी शैली को इस दृष्टि से अवश्य अपनाया कि उससे कश्मीरी संगीत-धारा का पुनरुत्थान करने की संभावना बनी। उसके पूर्व समुचित प्रश्रय के अभाव में कश्मीरी संगीत बुरी तरह से पिछड़ गया था। यूसुफ़शाह चूंकि स्वयं कला और संगीत का क़द्रदान था, अतः कश्मीरी ग़ज़लों और गीतों को ईरानी तर्ज़ पर निबद्ध करने का प्रशिक्षण हब्बा ख़ातून को कोई प्रसिद्ध संगीतकारों ने दिया। अनूठी प्रतिभा एवं अनुपम आवाज़ की स्वामिनी हब्बा ख़ातून एक तरह से न केवल कश्मीरी की वरन् फ़ारसी संगीत-शैली की भी एक सुविख्यात-संगीतज्ञ बन गयी। कश्मीरी संगीत में, जिसे हर्षदेव तथा अन्य शासकों ने संवर्धित किया था, फ़ारसी तथा मध्य-एशियाई संगीत के अत्यधिक प्रभाव के कारण विविध प्रकार के विदेशी साज़ों का प्रयोग खूब होने लगा था। हब्बा ख़ातून चूंकि दोनों तरह की संगीत-शैलियों में प्रवीण थी, अतः उसने एक नवीन संगीत-शैली की स्थापना कर संगीतकार के रूप में भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया। उसने 'रास्ति फ़ारसी' के आधार पर 'रास्ति-कश्मीरी' नाम की एक नये राग की रचना की, जिसे रात के अंतिम पहर में गाया जाता है। इसके अतिरिक्त फ़ारसी शैली का

एक राग जो मुकाम-इराक़ कहलाती है, को गाने में भी हब्बा ख़ातून ने अपनी कला-कुशलता का परिचय देकर पर्याप्त यश अर्जित किया। इस राग में निबद्ध कवयित्री का एक स्वरचित गीत अपनी मनोव्यथा, चिन्तातुरता, संयतता और संगीतात्मकता के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ है :

'गिन्दने द्रायस' (खेलने को निकली थी मैं)

खेलने को निकली ही थी घर से मैं,
कि आह, दिन ढल गया बीच में हा !

घर में जब तक रही, बुर्के में ही रही
बाहर निकली तो होंठों पर चढ़ी
मुझ पर रीझ गये बड़े-बड़े योगी
आह, दिन ढल गया बीच में ही।

माल से भरी दुकान थी मेरी
देखने को आती थी दुनिया सारी
माल लुटा, अब छायी मंदी
आह, दिन ढल गया बीच में ही।

मैं कुलीन वंश की बाला
तभी 'हब्बा ख़ातून' नाम पड़ा
मुझ पर जान देनेवाले थे कई-कई
आह, दिन ढल गया बीच में ही।'

हब्बा ख़ातून के संगीत ने धीरे-धीरे उसकी कविता को शिक्षित समुदाय में स्थान दिलाया। प्रारम्भ में फिरदौसी, उमर और हाफ़िज़ जैसे फ़ारसी के अमर कवियों के चहेतों ने हब्बा ख़ातून की (देशी भाषा में रचित) कविता को उपेक्षा के भाव से देखा किन्तु बाद में उन्होंने उसे कवयित्री के रूप में मान्यता दे ही दी। कालान्तर में, उसके कई कश्मीरी गीतों और कविताओं को फ़ारसी संगीत-शास्त्र के सन्दर्भ-ग्रन्थों में आवश्यक निर्देशों के साथ सम्मिलित किया गया और यही वजह है कि उसके अनेक गीत काल में गर्भ में विलीन अथवा क्षतिग्रस्त होने से बच गये हैं।

दो महान पूर्ववर्ती रचनाकारों, कवयित्री ललद्यद और कवि शेख नुरुद्दीन ने

जिस आध्यात्मिकता का निरूपण अपनी कविताओं में किया था, उनका तनिक भी पुट हब्बा ख़ातून की कविताओं में नहीं मिलता है। लल और शेख दोनों संत थे अतः उनका दृष्टिकोण मुख्यतया सुधारवादी रहा। अपने सन्देश को उन्होंने कविता के स्वर में ढाला। हब्बा ख़ातून के समकालीन ख़्वाजा हबीब उल्लाह नौशहरी स्वयं सूफ़ी संत होने के साथ-साथ एक कवि भी थे। कश्मीर में सन्त-कवियों की एक समृद्ध परंपरा रही है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस भू-भाग से अनेक प्रसिद्ध संतों का अवतरण हुआ है। यही कारण है कि इस धरती को 'रेश्यवअर' अर्थात् 'ऋषि-वाटिका' भी कहा जाता है। कश्मीरी के पारंपरिक संत-काव्य में पार्थिव शरीर की तुलना में आत्मा की महत्ता, शरीर की नश्वरता, मानसिक-इच्छाओं की असारता आदि विषयों पर चर्चा मिलती है। आडम्बर एवं स्वार्थपरता की भावना को भी इस काव्य में प्रताड़ित किया गया है। इसी प्रकार चर-अचर की एकात्मकता, परम सत्य एवं सनातन मूल्यों की महिमा पर भी इस काव्य में चर्चा मिलती है। यही बातें मनुष्य में संतोष की निमित्त बन उसे परमानन्द की स्थिति तक ले जाती हैं। संत कवियों के अनुसार आत्मा, परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करने के लिए तत्पर रहती है। इन मान्यताओं के अतिरिक्त संत काव्य में कहीं-कहीं पर कुछ व्यक्तिगत अनुभूतियों का भी उल्लेख मिलता है। विशिष्ट प्रकार के अप्रस्तुत-विधान से संयुक्त यह काव्य शताब्दियों से निराश और निःसहाय जनता में नवस्फूर्ति का संचार करता रहा है।

संत-काव्य की सार्थकता अथवा महत्त्व पर कोई टिप्पणी न करते हुए यदि हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि हब्बा ख़ातून इस काव्य के स्वर एवं स्वरूप से अविचलित एवं अछूती ही रही। उसने इस प्रभावशाली एव महत्त्वपूर्ण काव्य-आन्दोलन को नज़र-अंदाज़ कर कश्मीरी कविता में एक नये आंदोलन को जन्म दिया, जिससे यह कविता मानवतावादी और धर्म-निरपेक्षया की एक मौलिक एवं उदार दृष्टि से संपृक्त हो गयी। हब्बा, कश्मीरी भाषा की ऐसी प्रथम कवयित्री है जिसने अपार्थिव-जगत की गुत्थियों में उलझे बिना अपने दैनंदिन जीवन की ऐहिक इच्छाओं—मिलन, विछोह, कुंठा, ईप्सा आदि से उत्पन्न अपनी मनो-भावनाओं और अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए गीत-विधा को अपनाया। हब्बा ख़ातून से पूर्व जनता में ललद्यद की वाणी सुप्रचलित थी :

'देव पत्थर, देवालय भी पत्थर,
तब किसे पूज रहा तू, रे पंडित ?

या फिर,

'गुरु ने एक ही बात समझाई—
बाहर से मुख मोड़ और भीतर को खोज।'

या फिर, शेख नूरुद्दीन की यह प्रसिद्ध-उक्ति,

'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे'

अथवा,

'जन्म-मरण के दरिया को
वही सुगमता से पार करे
जो अपनी तरह दीन-दरिद्र
पड़ोसी का भी दुःख हरे।'

लौकिक इच्छाओं यथा प्रेम, मिलन, आशा, निराशा आदि के चित्रण को सम्भवतः संत कवियों ने अपने काव्यादर्शों के अनुकूल नहीं पाया और यही कारण है कि वे वे ज्यादातर आध्यात्मिक विचार-मंथन में खोये रहे। मगर, प्रश्न यह है कि ऐसे कवि कितने हैं, जिन्होंने विरागी संतों की तरह मन-काया का निग्रह किया है? ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जहाँ संतों की वाणी पर आचरण करने की दुहाई देनेवाले आडम्बरवादी अपने वैयक्तिक जीवन में राग-रंग में संलिप्त रहे हैं।

हब्बा ख़ातून की यह विशिष्ट उपलब्धि ही मानी जाएगी कि उसने अपनी अगाध भावनाओं को उस समय की कविता में प्रचलित रहस्यवादी प्रवृत्ति से प्रभावित होने नहीं दिया। वैसे यदि वह उक्त प्रवृत्ति का अनुसरण करती भी तो कोई आश्चर्य की बात न होती, क्योंकि अपने निराश जीवन से उसे इसी श्रेणी की काव्य-रचना से राहत मिल सकती थी। मगर वह भावुकहृदया पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी के साथ नितान्त नवीन एवं विशाल पथ पर अग्रसर हुई। एक तरह की मानवीय गरिमा उसका लक्ष्य तथा आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास उसका संबल था। यों हब्बा ख़ातून ने मानव-जीवन की नश्वरता एवं आत्म दमन अथवा विषय-विमुखता के लिए धर्मोपदेश की सार्थकता को पूर्णरूपेण नकारा भी नहीं। अपने एक गीत 'गिन्दनेद्रायस' में कवयित्री उस रहस्यवादी अनुभूति से प्रभावित लगती है जिसके अनुसार प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि इस क्षण-भंगुर संसार में 'स्व' का चिंतन-मनन असारता के सिवा और कुछ भी नहीं है। कवयित्री को जीवन से बेहद प्रेम था। ऐसे जीवन से, जिसमें कष्ट है, पीड़ा है, निराशा है। अनेक प्रकार के कष्टों से घिरे जीवन को उसने कभी धैर्य, कभी आशा और कभी उत्सर्ग की भावनाओं के साथ खुद जिया। **हब्बा खातून कश्मीरी भाषा में वेदना, अभाव और पीड़ा को स्वर देनेवाली प्रथम मानवतावादी और लोक परक (धर्मनिरपेक्ष) कवयित्री है जिसमें नाममात्र को भी कृत्रिमता अथवा अस्वाभाविकता नहीं है।** अपनी कतिपय सीमाओं तथा विवशताओं के बावजूद हब्बा ख़ातून ने कश्मीरी में

रोमांटिक काव्य के ऐसे सुमधुर एवं चित्ताकर्षक संगीत को जन्म दिया जो कुछ समय तक तो रहस्यवादी काव्यधारा के समकक्ष चलता रहा किन्तु बाद में उससे भी आगे निकल गया और उससे कहीं अधिक रोशन हुआ।

गीतिकाव्य प्रकृति से आत्मपरक होता है। यही कारण है कि हब्बा ख़ातून के मुक्तकण्ठ से गाये गये गीतों में कवयित्री के व्यक्तित्व की छाप यथेष्ट मात्रा में मिलती है। सहज संवेदनशीलता से संपृक्त ये गीत हब्बा की सच्ची-सरल भावाभिव्यक्तियों से निमज्जित हैं। प्रायः कवियों ने अपनी अनुभूतियों के अतिरेक को रूपायित करने के लिए बुलबुल, चातकी, बाघ, चिमनी, ब्रश आदि वस्तुओं को प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। मगर अपनी अनुभूति की सच्चाई एवं मनोद्वेलन की निश्छलता के कारण हब्बा ख़ातून को प्रतीक योजना का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अपनी पीड़ा को उसने जिस सहजता तथा स्वाभाविकता के साथ वाणी दी है, वह दुर्लभ है। प्रायः अपने प्रत्येक गीत में 'बेरहम' व 'बेवफ़ा' प्रियतम को अपनी पीड़ाओं का स्मरण कराकर कवयित्री ने अपनी भावाभिव्यक्ति को अतीव कारुणिक बनाया है, जो स्वाभाविक लगता है।

हब्बा ख़ातून के गीतों का विषय नानाविध भाव दशाओं के रूप में प्रेम का निरूपण है। विभिन्न मनःस्थितियों को रेखांकित करनेवाली इन भावदशाओं में कहीं आशा की आर्द्रता है (आ, मेरे अनार के फूलों का···) तो कहीं कुण्ठा (क्या मिलेगा तुझे मेरी मौत से···) इन दो मनःस्थितियों के बीच विरक्ति का भाव (तेरे लिए सब उत्सर्ग कर दूंगी···) तथा कटुता का भाव (ससुराल में मैं···) दृष्टिगत होता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कवयित्री के सभी गीतों का वर्ण्य-विषय प्रायः एक-समान ही है—प्रियतम के विछोह जनित नैराश्य अथवा विरह-जनित पीड़ा। वस्तुतः कविता में, विशेषकर रोमांटिक कविता में भावों की विस्तृत, गहन एवं हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं एवं अनुभूतियों के समूचे स्वरों को रूपायित करने का पर्याप्त अवकाश रहता है। मगर हब्बा ख़ातून ने अपने गीतों में प्रायः एक ही वर्ण्य-विषय को आधार बनाकर उसी के इर्द-गिर्द नयी दृष्टि और नूतन कल्पना शक्ति के साथ अपने काव्योद्गारों को अभिव्यक्ति दी है। उसकी गीत का प्रत्येक स्वर एक आह्वान है, जिसमें कवयित्री प्रियतम को अपनी प्रेमेच्छा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए उत्प्रेरित करती है। ऐसा लगता है कि हब्बा ख़ातून ने अपने को कवयित्री कम और प्रेयसी अधिक माना है। यही वजह है कि निर्मोही प्रियतम की चाह में विकल वह प्रेम-दीवानी उसे कभी कुसुम-कुंजों में ढूँढ़ती है तो कभी परायी स्त्रियों द्वारा उसको बरगलाकर ले जाने की बात सोचती है। गुणात्मक भेद के बावजूद हब्बा ख़ातून की तुलना उसकी समकालीन वरिष्ठ कवयित्री राजस्थान की मीराबाई से की जा सकती है। अपने

समकालीन दो महाकवियों—सूर और तुलसी की तुलना में मीरा का काव्य परिमित है। उसके काव्य का प्रधान कथ्य गिरधर गोपाल के प्रति समर्पित तथा उत्सर्गित अनन्य-प्रेम अनुभूति है जिसे मीरा अपने जीवन की सफलता का चरम ध्येय मानती है। इसके अतिरिक्त जीवन के किसी भी अन्य क्षेत्र में उसकी रुचि नहीं है। अपने आराध्य देव (परम-प्रिय) में उसका अडिग विश्वास है। इसी कारण वह प्रसन्न है, संतुष्ट है और कभी-कभी परमानन्द को भी प्राप्त हो जाती है; हब्बा ख़ातून अपने गीतों में एक ऐसी प्रेमिका के रूप में उभरकर आती है जो हाड़-मांस के बने अपने लौकिक प्रेमी को अपनी ओर फेरने तथा उसमें प्रेम की ज्योति जगाने के लिए याचना, अनुनय-विनय, अनुरोध आदि का सहारा लेती है—

'अकि लटि यिहमना'—
(काश, एक बार तुम आ जाते)

'उसके रूप से अंधेरा मिट जाय,
काश एक बार तुम आ जाते।

ओ मजीठ रंग के ऊनी परिधान!
किस घाट पर रँगा गया रे तू
दीमक चाट जाएगी अब तुझे
काश, एक बार तुम आ जाते।

अंधेरे में पानी भरने के बहाने
चली आई थी मैं उससे मिलने
भूल गई मैं घाट पर मटका
उसे फोड़ न दें अब क्रूर हवाएँ
काश, एक बार·····।

मित्र जब अपनी मित्रता तोड़ दे
रहा-सहा प्रेम भी टूट जाय
मैं हूँ कि हृदय यह मेरा
मित्र की खातिर तड़पता जाए
काश, एक बार····· ।'

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रियतम को पाने की यही याचना कवयित्री के उपलब्ध प्रायः सभी गीतों में प्रकारांतर से देखने को मिलती है। कवयित्री का एकमात्र गीत जिसकी विषय-वस्तु थोड़ी भिन्न है, **गिनदनि द्रायस**

(खेलने निकली मैं···) है। अन्य सभी गीत प्रिय मिलन के अभाव से जनित विरहाकुलता की सघनता से अनुस्यूत हैं। यद्यपि वह अच्छी तरह जानती है कि उसका प्रिय परस्त्री-विलास में निरत है तथापि अपने दिल में वह उसके प्रति कटुता अथवा घृणा का भाव नहीं लाती। उसके व्यक्तित्व की यह उदारता सही मायनों में उसके आदर्श प्रेमिका का प्रमाण है। अपने निंदकों को उसने एक-आध स्थान पर प्रताड़ित अवश्य किया है—'काश, उन्हें भी उतनी ही पीड़ा-वेदना हो, जितनी मुझे है' मगर, अपने प्रिय के लिए वह इस कोमल उपालम्भ से आगे नहीं बढ़ती—'मेरा वह सीधा-सरल बालम पर-स्त्रियों की बातों में आ गया···।' एक तरह से यह स्थिति प्रिय के प्रति एक प्रेयसी की पूर्ण समर्पण की निशानी है और इसके लिए वह प्रिय के सभी अवगुणों की अनदेखी कर क्षमा करने को भी प्रस्तुत है।

हब्बा ख़ातून के गीतों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनका मूल स्वर विरह-जनित पीड़ा है। मिलन के सुख को वर्णित करने में कवयित्री का मन बिल्कुल भी रमा नहीं है। एक वर्ष के छोटे-से अन्तराल को छोड़ हब्बा ख़ातून ने लगभग पन्द्रह वर्षों तक यूसुफ़शाह की रानी बन सुखी जीवन बिताया। इस दौरान उसे खूब शोहरत मिली, पति का असीम प्यार मिला। इतना ही नहीं, वह जनसामान्य में भी अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी। मगर, यह एक आश्चर्य ही है कि उसके किसी भी गीत में आनन्द के क्षणों का ज़रा भी संकेत नहीं है। महल में प्रवेश करने के उपरान्त कवयित्री को जिस अपूर्व सुख और आनन्द की प्राप्ति हुई होगी, जिस विपुल ऐश्वर्य को उसने भोगा होगा और कुलीन वर्ग से जिस सम्मान-स्वीकृति को उसने प्राप्त किया होगा, उसको देख किसे ईर्ष्या न हुई होगी? मगर लगता है कि इस यशोपलब्धि ने कवयित्री को इस रूप में तनिक भी उत्प्रेरित नहीं किया कि वह अपने आनंदित-मन के उच्छ्वासों को वाणी देकर एक-आध गीत मिलन-सुख पर भी रच डालती। कवयित्री के कुछ गीत जो यूसुफ़शाह के कश्मीर से निर्वासन के दौरान, जब वह सैनिक सहायता पाने की उम्मीद में एक शरणार्थी के रूप में शहंशाह अकबर के दरबार में पड़ा रहा, रचे गये लगते हैं। विरहाकुलता से संपृक्त इन गीतों में कवयित्री की सीधी-सच्ची मनोभावनाओं का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है। एक महत्त्वपूर्ण सैनिक कार्यवाही में यूसुफ़ ने शीघ्र ही अपना खोया हुआ राजपाट विरोधियों से पुनः प्राप्त कर लिया और वह विजयोल्लास में राजधानी की ओर बढ़ता हुआ अपने राज-परिवार और हब्बा ख़ातून से पुनः मिल सका। यूसुफ़ ने यह नाटकीय सफलता अपने बूते पर बिना मुगलों की सहायता के तथा घाटी में अपने शत्रुओं की कुमंत्रणाओं के बावजूद हासिल की थी। यह निश्चय ही आश्चर्य की बात है कि न तो यूसुफ़ की इस शानदार विजय और न ही पुनर्मिलन के सुख ने हब्बा ख़ातून को इस बात के लिए उत्प्रेरित अथवा उत्तेजित किया कि सौभाग्य या प्रतिष्ठा की पुनःप्राप्ति पर वह हर्षोल्लास को शब्दों में पिरो

दे। और तो और, उस प्रकृति को भी, जो बाल्यकाल से ही उसकी सहचरी रही, कवयित्री ने न तो सुखदायिनी और न सांत्वनादायिनी के रूप में उसे चित्रित किया है।

ऐसा क्यों है ? प्रायः ऐसे संवेदनशील विषयों पर कोई सुनिश्चित मत स्थापित करने का ज़ोख़िम उठाना ठीक नहीं रहता। हाँ, हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा का उल्लेख करना यहाँ पर अनुचित न होगा जिसकी कविता का मूलाधार 'वेदना' है और जिसे आलोचकों ने 'दुःखवाद' की प्रतिपादक कवयित्री घोषित किया है। वह कहती है :

'असंख्य सुविधाएँ मानवता के प्रथम चरण से हमारा सम्बन्ध जोड़ने में असफल रह सकती हैं, किन्तु आँखों से गिरा एक अश्रु-कण भी हमारे जीवन को अधिक सार्थक बना सकता है।'[1]

महादेवी पीड़ा में अपने प्रियतम को ढूँढ़ती है और पीड़ा को ही प्रियतम में खोजती है। वह यह भी मानती है कि पीड़ा और शोक उसके साथ गीले वस्त्र की तरह चिपके हुए हैं। प्रिय से मिलन की कामना उसके लिए महत्त्वहीन है क्योंकि यह स्थिति जीवन की जर्जरता और अकर्मण्यता को सूचित करती है। महादेवी जी एक तरह से पीड़ा और वेदना की पर्याय बन गयी है। वह कहती है :

'पर शेष नहीं होगी
यह मेरे प्राणों की पीड़ा,
तुम को पीड़ा में ढूँढ़ा
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा। (नीहार)

हब्बा ख़ातून की कविता को शायद इसी मानदण्ड पर आँकना उचित होगा।

हब्बा ख़ातून के गीतों में जहाँ प्रिय के प्रति भावात्मक अनन्यता एवं एक-निष्ठा देखने को मिलती है, वहाँ उसने प्रिय के रूप, गुण तथा व्यक्तित्व का तनिक भी परिचय देने का यत्न नहीं किया है। और कवियों ने प्रिय की आकर्षक मुद्रा, उसकी रूप-छवि, उसके आकार-प्रकार, उसकी आँखों, तीखी नाक, चौड़े कन्धों, सशक्त भुजाओं आदि का वर्णन कर पाठकों के साथ-साथ स्वयं भी आनंद का अनुभव किया है। गीतविधा के रचनाकारों की तुलना में महाकाव्य या प्रबन्धात्मक प्रेम-काव्य के रचयिताओं को यह अवकाश अधिक रहता है कि वे प्रिय के नख-शिख का यथास्थान चित्रण कर अपनी भावाभिव्यंजना को सशक्त बनाएँ। हब्बा ख़ातून ने अपनी विधा की सीमाओं के बावजूद कुछेक स्थानों पर अपने एवं प्रियतम के रूप-

---

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. एस. शर्मा. अशोक प्रकाशन 1968.

गुण का संक्षिप्त-सा वर्णन करने का प्रयास किया है। इसके लिए उसने जिन उपमानों की सहायता ली है वे हैं—अनार के फूल, बादामी-आँखें, जूही के फूल, तुलसी, चंदन आदि। कवयित्री का प्राकृतिक परिवेश से लिया गया यह अप्रस्तुत व्यापार-चित्रण रूप, रस और गंध के स्तर पर हमें पूर्णरूपेण रोमांचित/स्पंदित नहीं करता। अपने प्रिय की रूप-छवि का कवयित्री ने संभवतः मात्र दो स्थानों पर वर्णन किया है। एक उसकी गर्दन (पीठ) मर्दानी है और दो, उसका रंग-रूप यूसुफ़ जैसा है! इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कवयित्री का अभीष्ट प्रिय के हृदयांतर में प्रवेश करना था, उसके बाह्य रूपाकार के विशद चित्रण से उसका कोई सरोकार नहीं था।

कश्मीरी गीतिकाव्य में वैचारिक तत्त्व के सन्निवेश की परिकल्पना आधुनिक काल से की जाती है। अतः चार सौ पूर्व रचे गये हब्बा ख़ातून के गीत यदि वैचारिक तत्त्व की दृष्टि से रीते दीख पड़े तो इस कवयित्री का कोई गंभीर दोष नहीं माना जा सकता। दरअसल, वचनकाल के सभी गीत सरल, सत्यनिष्ठ तथा संगीतमय थे। लेकिन पिछले पाँच सौ वर्षों के दौरान विश्व में बौद्धिक तार्किकता के क्षेत्र में जो आशातीत प्रगति हुई उससे जीवनयापन आरामदेह ज़रूर बना है, आनंदप्रद नहीं। हब्बा ख़ातून के समय में जनता विपत्तियों तथा कष्टों में पलते हुए भी संतोष एवं ईमानदारी का जीवन व्यतीत कर रही थी। आधुनिक हिन्दी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं की कविता, जो लगभग तेरहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर पाँच सौ वर्षों की कालावधि में फैली हुई है, का स्वर मुख्यतः भक्ति-प्रधान रहा है। इस काव्य में परमात्मा की महिमा का बखान कर उसकी कृपावत्सलता की दीन याचना की गयी है। (दूसरे शब्दों में इस काव्य में भाव या हृदय पक्ष प्रबल रहा है, विचार या बुद्धि पक्ष गौण।) अतः हब्बा ख़ातून की कविता में भी विचार पक्ष को खोजना युक्तियुक्त न होगा।

पाठक यदि हब्बा ख़ातून के गीतों में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक अशांति से उत्पन्न जनसाधारण में व्याप्त भुखमरी, बेरोज़गारी, आर्थिक विषमता आदि ढूँढ़ने का प्रयास करेंगे तो उन्हें निराशा ही हाथ लगेगी। देश के अन्य क्षेत्रों में इसी काल में जो साहित्य रचा गया, उसमें भी आक्रमणकारी के अनाचार के प्रति राजनीतिक आक्रोश तो है लेकिन अकाल, रक्तपात अथवा लूटपाट आदि से आक्रांत जनसाधारण के कष्टों का चित्रण उसमें समुचित ढंग से नहीं मिलता। 'डेज़र्टिड विलेज,' 'द सांग आफ़ द शर्ट,' 'यी बीज ऑफ़ इंग्लैंड' जैसी पूर्वकाल की तथा 'भारत-भारती' जैसी वर्तमान काल की राजनीति-संचेतना-प्रधान रचनाएँ विरल ही नहीं अपितु दुर्लभ भी हैं। हब्बा ख़ातून की कविता में मात्र एक स्थान पर गौण-रूप में जन साधारण के दुख-दर्द का संवेदनात्मक स्तर पर चित्रण हुआ है जिससे पता चलता है कि पंद्रह वर्षों तक राजमहलों में रहने तथा जीवन में घटी कतिपय असाधारण घटनाओं के बावजूद कवयित्री जन-साधारण की पीड़ा

से अपरिचित नहीं रह सकी थी। पर उसका यह पीड़ा वर्णन मात्र प्रासंगिक है। कवयित्री घाटी के बाहर के अन्य कवियों की तरह ही मुख्य विषय से दूर रही है। केवल एक गीत में धीमे स्वर में उसने इस प्रसंग को छेड़ा है—

'यदि प्रभु करें नहीं,
और भाग्य चाहे नहीं,
तो मुट्ठी-भर अनाज लेकर
कोई जी सकता है कहीं ?'

संभवत: जब भावनाओं के क्षितिज पर प्रेम और भक्ति का आलोक गरहाने लगता है तो कवि लोग जन-पीड़ा को काव्य का विषय बनाने में तनिक संकोच करते हैं। यही वजह है कि हब्बा ख़ातून विरहजन्य आत्मपीड़ा के वर्णन में इतनी डूब गयी कि अन्य सभी विषय उसके लिए गौण हो गये।

भारतीय कवियों ने प्रकृति के नाना रूपों से सदैव ही घनिष्ठ सहचर्य अनुभव किया है। भारतीय काव्य, चाहे वह महाकाव्य हो, मुक्तककाव्य हो या प्रबंधकाव्य, प्राकृतिक परिवेश से लिये गये नाना रूपों के अतीव मनोहारी एवं प्रगल्भ-चित्रण से वह समृद्ध रहा है। गिरितालों से युक्त हिमाच्छादित पर्वत, बहते झरने, घने जंगल ताड़ अथवा आम्रकुंज, चंदन वन, भयावह नाग, लाल-लाल कमलों के बीच दूधिया हंस, कुटिल बगुले, दहाड़ते शेर, अल्हड़ गौवें, चौकड़ी भरते हरिण तथा नाचते मोर—इन नानाविध रूपों का चित्रण कवियों ने अपने भावों का संपोषण करने के लिए हृदयग्राही ढंग से किया है। कहीं-कहीं पर यह चित्रण इतना जीवंत, मुखर एवं स्वाभाविक बन पड़ा है कि दृश्य-विशेष के आधार पर स्थान-विशेष को पहचानना अथवा उसकी प्रतीति प्राप्त करना असंभव नहीं लगता। हब्बा ख़ातून के गीतों में प्राकृतिक व्यापार के विशद चित्रण की जो न्यूनता देखने को मिलती है, उसके दो कारण हैं। एक तो हब्बा ख़ातून के गीत आकार में छोटे हैं और दूसरे, गीत विधा (वचन)की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं। वैसे इस विधा में उपमा, रूपक, कल्पना आदि के प्रयोग की गुंजाइश रहती है और कवयित्री ने इनका सुन्दर प्रयोग भी किया है। यद्यपि हब्बा ख़ातून प्रकृति की गोद में जनमी और बड़ी हुई, लेकिन उनके गीतों में प्रकृति का वैसा मनोहारी चित्रण नहीं मिलता जैसा कविवर महजूर की कविता **'बागे निशात के गुलो'**, **'ग्रीस्यकूर'** या आजाद की कविता **'म्योन यावुन'** या परमानंद की उपदेश मूलक रचना **'कर्म बूमिकायि'** आदि में मिलता है। वैसे वन्य प्रकृति से कवयित्री की परिचिति हमें प्रभावित अवश्य करती है। उसकी कविताओं में जूही, चमेली, तुलसी, मुश्की, गुलाब, कुकरोधा, पुदीना,

चंदसूर, सिघाड़ा, बादाम, अनार, तूत, तोता, लवा पक्षी, बुलबुल, बाड़, नदी आदि का उल्लेख इस बात का प्रमाण है। अपनी भाव-प्रतिक्रिया को अभिव्यंजित करने के लिए कवयित्री का स्त्री-सुलभ मन वृहत् एवं विशालकाय देवदार के पेड़ों, भयानक शेरों, अपशकुनी उल्लुओं अथवा अन्य कठोर एवं असुन्दर वस्तुओं के चित्रण में बिल्कुल नहीं रमा है। शकुंतला जब कण्व के आश्रम से विदा हुई तो अपनी सखियों से विदा माँगते समय वह मृग-शावकों, तोतों, कुसुम बेलों आदि को देख-देखकर भाव-विभोर हो उठी थी। हब्बा ख़ातून के गीतों में भी कुछ ऐसा ही संदेश है। सकल जड़-चेतन एक ही प्राण-तत्त्व से अनुस्यूत हैं तथा व्यक्ति, वनस्थली तथा वनचर एक ही (वृहत्) परिवार के सदस्य हैं। तुलसी और चमेली, गुलाब और अनार, कुकरोधा और चन्दसूर, पहाड़ और नदियाँ आदि कवयित्री के बाल्यकाल से ही उसकी सहचरी रही हैं। इस निकट सहचर्य की कल्पना हममें से वही कर सकते हैं जो कृत्रिमता के भाव को त्याग-कर आमोद-प्रमोद के बहाने प्रकृति के रहस्यों को खोजने का प्रयास करते हैं। गाँव की लड़कियाँ कुछ समय पूर्व तक प्रायः ऐसा ही करती थीं। खाद्य-सामग्री एकत्र करने के बहाने दूर जंगलों की ओर निकल जातीं और स्वादिष्ट कंद-मूल आदि बटोरकर ले आतीं। वेदना के चरम क्षणों में हब्बा ख़ातून ने बचपन की इन्हीं चिरपरिचित वस्तुओं को याद कर और साक्षी बनाकर अपने दिल के दर्द को हल्का करने का प्रयास किया है वन्य संपदा के बीच अपनी सखियों को स्मरण कर बाल्यकाल की स्मृति उसे सांत्वना देने में सहायक होती है। तुलसी के पौधे से निहायत ही आत्मीय लहजे में वह सम्वेदना के स्वर में कहती है—

'चल री सखी, तुलसी ढूँढ़कर लाए
उस बेवर्दी का दिया यह घाव
अब ठीक हुआ न जाए,
आया न वह निष्ठुर सुध लेने
मुझ पर कर गया रे कठोर प्रहार।'

इसी तरह का सम्बोधन वह लाल गुलाब, जूही आदि से भी करती है। एकाध स्थान पर अपनी विरह-व्यथा का चित्रण करते हुए उसने अपने चंपई रूप की तुलना मुरझाये पुदीने से की है।

हब्बा ख़ातून की सरल जीवन-पद्धति कवयित्री को प्रकृति-प्रेम से जोड़नेवाली दूसरी मजबूत कड़ी है। पंद्रह वर्षों में फैले अपने आनन्दपूर्ण जीवन का, जब हर तरह का वैभव उसे सुलभ था, उसके गीतों में कहीं कोई वर्णन नहीं मिलता है। उसने दूध की मलाई, चन्दन के पानी आदि का सौंदर्यवर्धक प्रसाधनों के रूप

में वर्णन अवश्य किया है। भोज्य पदार्थों में कवयित्री की सरल रुचि का अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि उसने मछली, मुर्गा, मांस आदि का अथवा मध्य एशियाई पकवानों में उत्तेजक नामवाले पकवानों, जैसे **ननवोसा** (कामिनी चुंबन) तथा **मन व तू** (मैं और तू) का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया है। उसने वर्णन किया है दही-दूध, भात और लौकी सरीखे साधारण व्यंजनों का। सादगी और सरलता की प्रति-मूर्ति हब्बा ख़ातून ने प्रकृति की निश्छलता को जैसे अपने जीवन में पूर्णरूपेण उतार लिया था।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हब्बा ख़ातून और यूसुफ़ शाह ने अपने जीवन काल में अनेक प्राकृतिक स्थलों को खोज निकाला था और वे दोनों अपना काफ़ी समय इन्हीं स्थलों पर बिताते थे। कवयित्री के गीतों में इन मनोहारी स्थलों के नैसर्गिक सौन्दर्य का भी चित्रण नहीं है। लगता है कि प्रिय के प्रेम में वह इतनी निमग्न थी कि प्रकृति की शोभाश्री का अविरत भाव से देखने का उसके पास समय ही नहीं था। दरअसल, उसके लिए उसका प्रिय ही उसके संसार का केंद्र-बिन्दु था और अन्य कोई भी स्थिति या भाव उसे अभिभूत नहीं कर सके।

हब्बा ख़ातून के गीतों में स्थानीय परिवेश अथवा पृष्ठभूमि का जो संस्पर्श और प्रयोग देखने को मिलता है, उसकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि वह गीतों की मुख्य भावधारा—प्रिय से अपार प्रेम एवं विरह-जनित पीड़ा को कहीं भी बाधित नहीं करता। अपने प्रिय को वह एक बहुमूल्य और दुर्लभ शाल (शाहतोश) जो ऊँचे पहाड़ों पर पायी जानेवाली भेड़ों की मुलायम ऊन से बनती है, भेंट करना चाहती है। इसी प्रकार कवयित्री एक अन्य प्रिय वस्तु, जिसे वह अनुपम उपहार के रूप में अपने प्रिय को देना चाहती है, मुलायम पोस्त वाली पशमीने की जाकेट का भी उल्लेख एक गीत में करती है। विरहिणी की अन्तर्वेदना से स्वर में स्वर मिलाता निरीह अबलाओं का चिरसहचर चर्खा, जिसे चलाते-चलाते उँगलियों का घिस जाना, प्रेम का क्षण-भंगुर धागा आदि, इन सबका कवयित्री के गीतों में स्थानीय परिवेश में बड़ा ही मार्मिक वर्णन मिलता है। एक गीत में कवयित्री ने अपने प्रिय को 'वोगअ' (पुराने कश्मीरी मकानों की छत पर बना रोशनदान) में से झाँककर देखने की जो कल्पना की है, वह अतीव सुन्दर बन पड़ी है। कवयित्री ने पानी भरने को चश्मे या नदी पर जानेवाली कश्मीरी ग्राम-युवतियों की विविध विनोदपूर्ण चेष्टाओं का भी हृदयग्राही वर्णन कई स्थानों पर किया है। नदी का घाट इन पनभरनियों (वारवलकाकनि) के लिए एक तरह से मिलन-स्थल (सभा-स्थल) का काम करता है, जहाँ वे खुलकर बतियाती हैं। ग्रीष्म के आगमन पर बर्फ़ के विगलन को उपमा में बाँधने की कल्पना कश्मीर जैसे प्रदेश में ही संभव है। इसी प्रकार, सिर पर भारी बोझ लिये चढ़ाई चढ़ते समय व्यक्ति के हाँफने का चित्रण भी प्रायः हब्बा ख़ातून सरीखी एक ग्रामयुवती ही कुशलतापूर्वक कर

सकती थी। विवाहोपरान्त माँ-बाप द्वारा दुलहिन को विदा करने के दृश्य को कवयित्री ने बहुत ही कम शब्दों में अत्यन्त चित्रमय ढंग से वर्णित किया है। वैवाहिक जीवन का रोमांच, अपरिचित के लिए आसन्न भय, वर पक्ष का सुन्दर-सजी डोली लिये आँगन में प्रतीक्षा करना, माँ-बाप तथा सगे-संबंधियों की शुभाशीष, सखियों द्वारा विवाह-गीत गाना तथा विदाई के लिए डोली के पीछे-पीछे दूर तक चलना आदि प्रसंग अत्यन्त हृदयग्राही ढंग से वर्णित हुए हैं। यह उल्लेखनीय है कि स्थानीय परिवेश का यह पुट मात्र इन वस्तुओं, स्थितियों या प्रसंगों का चित्रण करने के उद्देश्य से नहीं हुआ है, अपितु ये सभी कवयित्री के भावपूर्ण हृदय की आंतरिक एवं निगूढ़ आवश्यकता को दर्शाते हैं।

ऐसा माना जाता है कि वड्र्सवर्थ ने कविता के लिए जहाँ एक ओर सर्वसामान्य द्वारा प्रयुक्त बोलचाल की भाषा के व्यवहार पर बल दिया, वहाँ दूसरी ओर उसने अपनी कविता में कतिपय अपरिचित, दुर्बोध एवं दुरूह शब्दों को भी सुसंगतता के साथ अपनाया। अपनी तरह से सीमित दायरे में हब्बा ख़ातून ने भी प्रचलित शब्दावली के साथ-साथ कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो कविता में वांछित प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से 'फिट' नहीं बैठते। उदाहरण के लिए कवयित्री द्वारा प्रयुक्त 'दराँती' शब्द में कोई ऐसा काव्यतत्त्व नहीं झलकता जो पाठक को मुग्ध कर सके। 'सोलिटरी रीपर' कविता में भी यह शब्द कुछ ऐसी ही निर्जीवता लिए हुए है। ध्यान से देखा जाए तो हब्बा ख़ातून ने परंपराजन्य अप्रस्तुत विधान में आमूल रूपांतरण लाकर इस शब्द को प्रेम को शब्दावली के निकट लाने का प्रयास किया है—

'हाँचि कमि द्रांचि सूत्य कतुरनम बदनो···।'

(जाने किस तोहमत पर उसने मेरे बदन को दराँती से काट डाला) 'द्राँचि' (दराँती) शब्द का प्रयोग इस पंक्ति में हाँचि शब्द के साथ तुक मिलाने के अभिप्राय से किया गया है ताकि पंक्ति की श्रुति-मधुरता बढ़ जाए। कवयित्री ने इसी सन्दर्भ में जिन अन्य शब्दों का प्रयोग किया है, वे हैं—वान (दुकान) क्राल, (कुम्हार), रंगुर (रँगरेज़) आदि। ये सभी शब्द हब्बा ख़ातून के गीतों की भाव-प्रवणता में अभिवृद्धि करते हैं। एक तरह से प्रत्येक शब्द का चयन उसके अर्थ-सौन्दर्य के साथ-साथ उसके नाद-सौन्दर्य को भी ध्यान में रखकर किया गया है।

हब्बा ख़ातून का प्रत्येक गीत एक सुन्दर पंक्ति (चरण) जिसे कश्मीरी में 'हुर' कहते हैं, से शुरू होता है। यह पंक्ति टेक पद के साथ मिलकर एक द्विपंक्तिक पद्य बनाती है। गीत के प्रत्येक छंद में तीन-तीन पंक्तियाँ और हर छंद के अंत में टेक पद रहता है। विषम चरणों की तुक मिलती है जबकि द्वितीय चरण अतुकान्त है। कतिपय गीतों में एक ही तुक का समूचे गीत में निर्वाह किया गया है। चार पंक्तियों वाले एक या दो पद भी मिलते हैं। कवयित्री ने मध्यवर्ती कतु

(लाटानुप्रास) का भी बहुलता के साथ प्रयोग किया है। इसका एक उदाहरण ऊपर के गद्यांश में दिया जा चुका है।

कवयित्री द्वारा प्रयुक्त तुक एवं अनुप्रास की विविधता को लक्षित करनेवाले कतिपय उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं :

क. **वुडुर** लसान **कुडुर** गोमो।

ख. **कारि** लोयनम नार करतल, **दारि** ओश छुअ जोये।

ग. **वोग** प्यठ वुछनम
शोग लोगिथ वूलनम
रोगि रोगि गौम गुमय

कुछ अन्य उदाहरण **'छु में बालि तमना'**, **'वलो म्यानि पोशे मदनो'** और **'छाव म्यान दान पोश'** आदि में देखे जा सकते हैं।

कविता के आंतरिक सौन्दर्य का सही मूल्यांकन रचना-कर्म के लिए निर्धारित सीमित मानों के आधार पर विश्लेषित करने की प्रक्रिया में संभव नहीं है। यद्यपि इन मानों की कविता के मूल्यांकन में अपनी विशिष्ट भूमिका रहती है, तथापि कविता को उसकी समग्रता में (उसकी संघटित प्रभविष्णुता में) देखने-परखने में प्रायः ये मान उतने कारगर सिद्ध नहीं होते। इस विषय पर और अधिक कुछ न कहकर, संक्षेप में बस इतना कहना पर्याप्त होगा कि हब्बा ख़ातून के गीत यदि मर्मस्पर्शी हैं तो एकमात्र अपने काव्यत्व के कारण। बाद के कवियों ने उस महान् कवयित्री का अनुसरण करने की पर्याप्त कोशिश की, पर उन्हें आंशिक असफलता ही हाथ लगी। हब्बा ख़ातून की कविता अपने युग की कविता होते हुए भी युगातीत है।

कश्मीरी कविता पर हब्बा ख़ातून का प्रभाव

शेख नूरुद्दीन के लगभग एक सौ पच्चीस वर्ष बाद हब्बा ख़ातून का कश्मीरी साहित्य-मंच पर पदार्पण हुआ। इस लम्बी कालावधि के दौरान किसी भी ऐसे प्रभावशाली कवि का कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिसने अपनी मातृभाषा (कश्मीरी) को सायास अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया हो। उसके समकालीन जितने भी कवि हुए, सभी ने विपुल मात्रा में फ़ारसी में ही काव्य-रचना की। हब्बा ख़ातून अपनी शिक्षा के आधार पर या फिर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं संपर्क के बल पर, यदि वह चाहती तो उक्त परंपरा का अनुसरण कर फ़ारसी में काव्य-रचना कर सकती थी। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। अपनी भावनाओं को वाणी देने के लिए वह कश्मीरी भाषा पर ही आश्रित रही जिससे जनता में इस भाषा के प्रति रुचि बढ़ी और भावाभिव्यंजना के लिए इस अभिव्यक्ति माध्यम को प्रयुक्त करने की सम्भावनाओं को गति मिल गयी। अपनी भाषा के प्रति कवयित्री की इस आस्था एवं निष्ठा ने हब्बा ख़ातून को इस दृष्टि से चिर-स्मरणीय बना दिया है कि उसके इस योगदान के कारण ही कश्मीरी भाषा में साहित्य सृजन की परंपरा आज तक अबाध गति से चली आ रही है।

हब्बा ख़ातून की महानता इस बात में भी है कि उसने जाने या अनजाने कश्मीरी पर फ़ारसी के बढ़ते हुए प्रभाव को आत्मसात् नहीं किया। उसकी कविता ने उन सभी कवियों के लिए स्फूर्तिदायिनी प्रेरणा का काम किया जो फ़ारसी के प्रभाव से मुक्त होकर अपनी मातृ-भाषा में काव्य-रचना करने को आतुर थे। (उसकी यह पहल आगे चलकर कश्मीरी काव्य के लिए अपूर्व वरदान सिद्ध हुई।)

हब्बा ख़ातून से पूर्व ललद्यद और शेख नूरुद्दीन ने क्रमशः 'वाक्' और 'श्रुक' को अपनी काव्य-रचना का माध्यम बनाया था। हब्बा ख़ातून ने पहली बार गीत-विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जो कश्मीरी काव्य में वचन-

काल या गीति-युग का सूत्रपात था। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि कश्मीर-काव्य में प्रेमगीत परंपरा को जन्म देनेवाली प्रवर्तक कवयित्री हब्बा खातून ही है। शिल्पगत दृष्टि से कश्मीरी गीति-विधा यद्यपि फ़ारसी प्रतिमान के निकट लगती है, लेकिन अन्य दृष्टियों से वह उससे एकदम भिन्न है। उसकी इस रचनाशैली को बाद के कवियों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनाया जिनमें अरणिमाल, महमूदगामी, रसूल-मीर, महजूर तथा आज के अनेक कश्मीरी कवि शामिल हैं।

तेरहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच कश्मीरी भाषा में विशेष परिवर्तन आ गया था। हब्बा ख़ातून से पहले जितने भी संत कवि हुए थे, उनके काव्य की वैचारिकता एवं भाषाभिव्यंजता ने जनसाधारण को प्रभावित अवश्य किया था, किन्तु उस काव्य के संगीत और माधुर्य के प्रति जनमानस की वैसी उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया नहीं रही थी। हब्बा ख़ातून के सुरीले गीत तो कश्मीरी काव्य में एक नये युग के आगमन की सूचना देते हैं।

परवर्ती कवियों पर हब्बा ख़ातून के प्रभाव की विस्तार से चर्चा करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। मात्र एक या दो उदाहरण उद्धृत करने पर्याप्त होंगे। अकमाल-उद्-दीन वेग (1646-1723 ई.) हब्बा ख़ातून के निधन के पचास वर्ष बाद कवि के रूप में उभरा। यद्यपि वह फ़ारसी का श्रेष्ठ कवि था, मगर उसने कश्मीरी में भी कतिपय सुन्दर-सुमधुर गीत रचे। उसका प्रसिद्ध गीत **'बालि पय रूमय रूमय'** (प्रिय तेरे प्रेम से मेरा रोम-रोम आप्लावित है।) हब्बा ख़ातून के गीत **'छू में बालि तमन्ना'** से काफ़ी मिलता-जुलता है। महजूर (1897-1952 ई.) को, 1926 में रचित अपनी जिस ग़ज़ल **'पोशि मति जानानो'** (मेरे फूलों के राजकुमार, मेरे प्रियतम) से असीम यश मिला, वह हब्बा ख़ातून की शैली पर ही रची गयी है। इस बात का प्रमाण स्वयं महजूर की वह प्रतिक्रिया है जिसका आज़ाद ने (कश्मीर ज़वान और शायरी में) विस्तार से उल्लेख किया है। महजूर का कहना है कि उन्होंने एक दिन दूधगंगा (नदी-विशेष) के किनारे कुछ ग्राम-युवतियों को हब्बा ख़ातून का गीत 'वलो म्यानि पोशे मदनो···' सुरीली आवाज़ में गाते हुए सुना। (इस गीत की सुमधुरता से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसी तर्ज़ पर अपना गीत 'पोशे मति जानानो' तैयार किया।)

हब्बा ख़ातून ने न केवल कश्मीरी काव्य-धारा की अबाधता को अक्षुण्ण रख उसमें नव स्फूर्ति का संचार किया प्रत्युत, भाषा-निर्माण में भी उसने विशेष योग-दान किया। चूँकि हब्बा ख़ातून के काव्य का कोई लिखित अभिलेख प्राप्त नहीं है, अतः कवयित्री के भाषा विषयक योगदान का सही निर्धारण कर पाना कठिन है। फिर भी कवयित्री के उपलब्ध गीतों का परीक्षण करने पर पाठकों को कश्मीरी के ऐसे अनेक मुहावरे, विम्ब, रूपक एवं अन्य उक्ति-प्रयोग देखने को

मिलेंगे जो आज भी उसी ताज़गी और अर्थवत्ता के साथ कश्मीरी में प्रयुक्त होते हैं। कवयित्री के निधन के चार सौ वर्ष बाद भी आज कश्मीरी कवि और लेखक अपनी भाषा में उसके द्वारा प्रयुक्त इन शब्द प्रयोगों को इस्तेमाल करते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार है : —

सबकस त्रावुन (पाठशाला/मकतब में भेजना)
लोदमुत लूरून (बने हुए को मिटाना)
दय नय दियि त डेकि नय पूरे
(जब तक दैव और कर्म-लेख साथ न दे)
कल गनेयम (मेरी लगन बढ़ी है)
वदनस न छिद (आँसू थमते नहीं)
सीरस सरपोश (रहस्य का रखवाला)
मरन् खोत सख (मृत्यु से भी दुस्सह)
बरअ बुकअ (भरे हुए को छलकाना)
कन बरन्य (कान भरना)
हर (दूध की मलाई)
बानअ थुरून (बर्तन बनाना)
जामअ पारून (वस्त्र पहनना)
ग्रायिय मारान (मटक कर चलना)
वनअ की तपरेश तपअ आय वसिय
(वन के तपस्वी ऋषियों की तपस्या भंग हुई)
चसिय (ठूँस कर) आदि।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि इनमें कितने शब्द-प्रयोग हब्बा ख़ातून द्वारा निर्मित हैं तथापि इतना अवश्य है कि शब्द निर्माण में कवयित्री का योगदान यथेष्ट रहा है। कवयित्री के व्यक्तित्व की छाप उन शब्द तथा उक्ति-प्रयोगों में स्पष्टतया देखी जा सकती है जिनके अर्थों में पीड़ा या विषाद की ध्वनि है।

भाषा और उसका साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी से जनता की बहुमूल्य विरासत हुआ करती है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना भी महान क्यों न हो, यह स्पष्ट दावा नहीं कर सकता कि उसके निजी प्रयासों से ही भाषा या साहित्य का निर्माण हुआ है। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी ऐसे रचनाकार की प्रतिभा, जिसने काव्य-साधना में अपने जीवन का खून-पसीना बहाया हो, अज्ञात रह जाती है या फिर अंधकार के गर्भ में तिरोहित हो जाती है। मगर यदि कवि या कवयित्री

के प्राणों में ताज़गी, स्फूर्ति और सघनता है तो उसकी काव्य-साधना अपने पाठकों की समझ और कल्पना-शक्ति को पैना कर उन्हें पुश्त-दर-पुश्त बाँध रखने में सफल हो जाती है। हब्बा ख़ातून का कश्मीरी काव्य को योगदान इसी कोटि का है। उसने जो भी गाया या रचा, वह सत्यनिष्ठ, सहज और सरल है। वह अपने आप में एक श्रेणी (क्लास) है। कश्मीरी भाषा और साहित्य उस महान् कवयित्री का चिरऋणी रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

कश्मीरी ज़बान और शायरी (खण्ड 1-3) : अब्दुल अहद आज़ाद
भाषा, कला और संस्कृति अकादमी, श्रीनगर

किंग्स ऑफ कश्मीर (खण्ड 1-3) : जे. सी. दत्ता, कलकत्ता, 1898

तवारीख-ए-कश्मीर : मोही-उद्-दीन फौक़

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (खण्ड-1) : इंट्रोडक्टरी पार्ट-2,
सर जार्ज ग्रियर्सन, मोतीलाल बनारसीदास, 1967

लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया : ए. समरी : डॉ. एस. वर्मा
वी. वी. रिसर्च इन्सटिट्यूट, होशियारपुर

काशिर शायरी : जी. एम. हाजिनी,
साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, 1960

मक़ालात : जी. एम. हाजिनी
नूर मुहम्मद प्रेस, श्रीनगर, 1967

हब्बा खातून : एम. ए. कामिल

स्टडीज़ इन कश्मीरी : जे. एल. कौल
कपूर ब्रदर्स, श्रीनगर, 1968

राजतरंगिणी : आर. एस. पण्डित
साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली

काशिर अदबुच तारीख : अवतारकृष्ण रहबर, श्रीनगर, 1961

टेल्स फ्राम न राजतरंगिणी : एस. एल. साधू
कपूर ब्रदर्स, श्रीनगर, 1967

तवारीख-ए-कश्मीर (फ़ारसी में लिखित) : पीरज़ादा हसन शाह
भाषा, कला और संस्कृति अकादमी, श्रीनगर

हब्बा खातून : मुहम्मद यूसुफ टेंग
भाषा, कला और संस्कृति अकादमी, श्रीनगर

जून : जे. एन. वली
जम्मू एवं कश्मीर अकादमी की पत्रिका
अंक 3; वर्ष 3, अंक 6

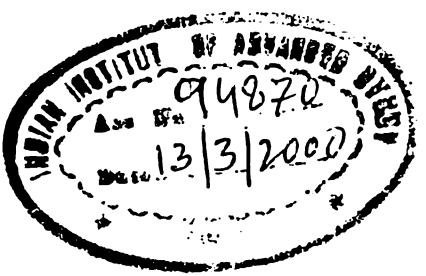

हब्बा ख़ातून (सोलहवीं शताब्दी) एक नरेश की जीवन-संगिनी थी, जो अपनी रचनाओं से कश्मीरी काव्य-जगत् में एक (सं) गीत-साम्राज्ञी के रूप में सदा-सदा के लिए अमर हो गयी। यह उस ग्राम्य-बाला हब्बा ख़ातून की यशोज्ज्वलता का ही परिणाम है कि उसके पति यूसुफ़शाह चक को इतिहास ने विस्मृत नहीं होने दिया। एक ग्राम्य-बाला और राजरानी तथा एक संगीतज्ञा और कवयित्री के गुणों का सुन्दर सजीव सम्मिश्रण हब्बा ख़ातून के कृतित्व में परिलक्षित होता है। उसके भावपूर्ण काव्योद्गार *वचन* कहलाते हैं, जिनके माध्यम से कवयित्री के समन्वयकारी व्यक्तित्व को कश्मीरी काव्य और संस्कृति में एकाकार होते देखा जा सकता है।

हब्बा ख़ातून का जीवन-चरित चूँकि जनश्रुतियों के बाहुल्य से आच्छादित है, अतः उसके द्वारा रचित सभी गीतों की प्रामाणिकता के बारे में निःशंक होकर कोई भी मत स्थापित करना एक जटिल कार्य है। *श्री श्याम लाल साधू* ने इस विनिबन्ध में, उपलब्ध सीमित सामग्री के आधार पर, हब्बा ख़ातून के जीवन और कृतित्व का सम्यक् परिचय दिया है और कश्मीरी साहित्य में इस कवयित्री के महत्त्वपूर्ण योगदान का मूल्यांकन किया है।

श्री साधू की कश्मीरी में लिखि
द्वारा पुरस्कृत हैं। *वुछ प्रंग* पर उन
चुका है। अंग्रेज़ी में भी उनकी दो

Library IIAS, Shimla
H 891.499 Sa 15 H
00094870

आवरण चित्र 'बाबरनामा' से
चित्रांकन : मोहम्मद कश्मीरी (1598 ईस्वी)

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00